गोसाँई तुलसीदासजी

की

दोहावली

[सटिप्पण-संस्करण]

सम्पादक

साहित्य-भूषण

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा, एम० आर० ए० एस०

—

प्रकाशक

रघुनन्दन शर्म्मा

हिन्दी प्रेस, प्रयाग

———

प्रथम संस्करण] [मूल्य १)

प्राक्कथन

कवि-कुल-दिवाकर महात्मा तुलसीदासजी के रचे हुए छः* बड़े ग्रन्थरत्नों में से यह दोहावली एक है। दोहावली को पढ़ने पर विदित होता है कि, इसकी रचना किसी लक्ष्य-विशेष को आगे रख, नहीं की गयी। यह तो महात्मा तुलसीदासजी के रचे दोहों और सोरठों का, जिनकी संख्या ५७३ है, एक संग्रह मात्र है। इस संग्रह में दिये हुए अनेक दोहे व सोरठे, उनके रचे अन्य ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। किन्तु लगभग आधे दोहे व सोरठे ऐसे हैं, जो अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलते। इससे ऐसा जान पड़ता है कि, जब यह ग्रन्थ रचा गया था, तब इसकी पद्य-संख्या अढ़ाई, तीन सौ ही थी, पीछे या तो स्वयं ग्रन्थकार ने अथवा महात्माजी के किसी भक्त ने उनके रचे ग्रन्थों से उपदेशात्मक एवं मनोरञ्जक दोहे व सोरठों का संग्रह कर, दोहावली को पुष्ट काय बना दिया है। कुछ भी हो—इसमें सन्देह नहीं

---

* दोहावली, कवितरामायण, गीतावली, रामाज्ञा, विनयपत्रिका और रामचरितमानस—ये छः बड़े ग्रन्थ हैं।

कि, दोहावली के समस्त पद्य कवि-कुल-तिलक महात्मा तुलसीदास-जी की ही कवि-प्रतिभा का चमत्कार हैं।

रामानन्दियों के मतानुसार यह दोहावली भक्त-शिरोमणि तुलसीदासजी का एक रहस्य-ग्रन्थ है। उन लोगों का कहना है कि, गुसाँईजी ने रहस्य-ग्रन्थों के मङ्गलाचरण मे अपने एकमात्र आराध्य-देव भगवान् श्रीसीतारामजी को ही स्थान दिया है। किन्तु जो रहस्य-ग्रन्थ नहीं हैं, उनके मङ्गलाचरण पञ्चदेवता-त्मक हैं। दोहावली के कितने ही पद्य इस मत के समर्थन मे उद्धृत भी किये जा सकते हैं।

दोहावली की एक विशेषता यह भी है कि, इसमें केवल शान्तरस ही नहीं, प्रत्युत विविध रसों का समावेश भी है। इस ग्रन्थ के मुख्य विषय—भक्ति, ज्ञान, प्रेम और साधारण नीति हैं। इन चारों ही विषयों पर विद्वान् कवि ने अनूठी उक्तियों द्वारा अच्छा प्रकाश डाला है। इस सफल कवि की ये उक्तियाँ और इसके प्रभावोत्पादक सुन्दर भाव, सचमुच अमोल रत्न हैं। इन उक्तियों के सहारे कोई भी साहित्य-शिल्पी अथवा वक्ता अपने लेख या भाषण को ओजस्वी एव प्रभावोत्पादक बना सकता है। अतः लेखकों तथा वक्ताओं को उचित है कि, वे दोहावली के जितने कर सकें, उतने दोहे कण्ठस्थ करने का प्रयत्न करें। कहना चाहें, तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि, वर्तमान

काल मे इस ग्रन्थ का पठनपाठन प्रत्येक दृष्टि से केवल आवश्यक ही नही, प्रत्युत परमावश्यक है।

देखा जाता है कि, दोहावली का प्रचार देश में नही के बराबर है। इसका यह कारण नही है कि, शिक्षित समाज दोहावली को कम आदर की दृष्टि से देखता है, नही नही, ऐसा समझना बड़ी भारी भूल का काम है। इसका वास्तविक कारण है, इस ग्रन्थ की क्लिष्टता। इस ग्रन्थ में एक दो नही, कितने ही दोहे ऐसे क्लिष्ट हैं कि, जिनके अर्थ लगाने में बड़े बड़े हिन्दी-कोविदो की बुद्धि को विशेष प्रयास करने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी दशा होने पर, क्या ऐसे ग्रन्थ का प्रचार या उसकी मान्यता विशेष रूप से हो सकती है?

दोहावली का यह संस्करण इस ग्रन्थ की क्लिष्टता दूर करने के उद्देश्य से प्रकाशित किया जाता है। इसमे प्रत्येक पद्य के नीचे उसके शब्दार्थ, अलङ्कार-परिचय और अन्तर्कथाओ को स्थान दिया गया है। क्लिष्ट स्थलो का सरल एव बोधगम्य अर्थ अथवा सारांश समझाने का भी प्रयत्न किया गया है। सम्पादक ने यथा-सम्भव ऐसा प्रयत्न किया है, जिससे इस संस्करण द्वारा छात्रो तथा जनसमुदाय को महात्मा तुलसीदासजी की पीयूषमयी वाणी का रसास्वादन सहज मे प्राप्त हो सके।

हिन्दी-कोविदों का मत है कि, तुलसीदासजी के ग्रन्थों का प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध नही है। यही कारण है कि, भिन्न-

भिन्न सस्करणों मे पाठान्तरों की भरमार है। काशी को नागरी प्रचारिणी सभा की "तुलसी ग्रन्थावली" में प्रकाशित, दोहावली का सस्करण अन्य संस्करणों की अपेक्षा शुद्धतर है। अत इस सस्करण के पद्यों की पाठशुद्धि अधिकांश उसीके आधार पर की गयी है। किन्तु सम्पादक को यदि किसी अन्य संस्करण का पाठ ठीक जान पड़ा है, तो "तुलसी ग्रन्थावली" के पाठ का आग्रह न कर, इस संस्करण में, वही पाठ दे दिया गया है। साथ ही उस पद्य का पाठान्तर भी उसीके नीचे दिया गया है।

ग्रन्थ के आरम्भ में ग्रन्थकार भक्ताग्रणी महात्मा तुलसीदास जी का एक काल्पनिक रंगीन चित्र भी दिया गया है। कल्पना-प्रसूत इस चित्र को देख यह नहीं कहा जा सकता कि, इस चित्र के तुलसीदास के मुखमण्डल पर उनकी अनूठी कवि प्रतिभा की छाया विद्यमान है। बड़े ही खेद की बात तो यह है कि, हिन्दी भाषा के अनेक अप्रतिम प्रतिभाशाली अतीतकालीन कवियों की तरह, महात्मा तुलसीदासजी के चित्र और चरित्र भी, आधुनिक साहित्य-समालोचकों के अनुमान की दौड़ के लिये, विस्तृत क्षेत्र बने हुए हैं।

दारागंज, प्रयाग
मि॰ भाद्र कृ॰ १३ सं॰ १९८८
१०—९—१९३१

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

कहा जाता है, इनके जन्म-समय विचित्र घटनाएँ घटी थीं। मूल-गोसाईं चरित में लिखा है कि, पृथिवी पर गिरते ही शिशु तुलसीदासजी के मुख से "राम राम" निकला था और ये हाय हाय कह कर रोते नहीं थे। जन्मते ही उनके मुख में बत्तीसों दाँत थे और वे पाँच वर्ष जैसे जान पड़ते थे। जब उनका नाला काटा गया, तब आकाश से शङ्खध्वनि जैसा शब्द सुन पड़ा था। इन सब घटनाओं को देख आत्मारामजी दुबे चिन्तित हुए और ज्योतिषियों को बुलाकर उनकी सम्मति ली। ज्योतिषियों ने विचार कर कहा—यदि यह बालक तीन दिवस तक जीवित रहा, तो आगे विचार कर जैसा उचित समझ पड़ेगा फिर बतलाया जायगा।

कहा जाता है, वह बच्चा तीन दिवस तक जीवित रहा। तब तो दुबे जी महाराज की व्यग्रता की इयत्ता न रही। वे मन ही मन सोचते थे कि, अब क्या किया जाय। इतने में उनकी धर्मपत्नी हुलसी उस बालक को प्रसव कर, चतुर्थ दिवस बीमार पड़ गयी। यहाँ तक कि, अपने जीवित रहने में उसके मन में सन्देह उत्पन्न हुआ। अन्त में अपनी मानसिक निर्बलता के वशीभूत हो, हुलसी ने अपनी एक दासी से कहा—"इस बच्चे को तू अपने ससुर के घर हरिपुर ले जा और वहाँ इसका पालन पोषण करना। यदि ऐसा न हुआ तो मुझे भय है कि, मेरे मर जाने पर लोग इस बच्चे को कहीं फेंक न दें। भगवान् तेरा भला करेंगे।" यह कह और उस दासी को, अनेक बहुमूल्य वसन भूषण दे, हुलसी ने उसी रात बालक सहित हरिपुर भेज दिया। उधर दासी उस बच्चे को ले, अपनी

ससुराल पहुँची और इधर उसी रात को अर्थात् एकादशी को ब्राह्म मुहूर्त में हुलसी ने अपना शरीर त्याग दिया। हुलसी की असामयिक मृत्यु से आत्मारामजी शोकान्वित हुए और बच्चे की ओर से भी उनको कुछ भी आशा नहीं रही।

यद्यपि वह दासी बालक को ससुराल में ले जाकर यत्नपूर्वक उसका पालन पोषण करती थी, तथापि उस अभागे का साथ उसके भाग्य ने न दिया। पाँच वर्ष के पश्चात् वह दासी भी उस बालक को अनाथ छोड़ कालकवलित हो गयी। दासी के पञ्चत्व को प्राप्त होने के पश्चात्, दुबेजी के पास सँदेसा आया कि, वे उस बालक को ले जावें। किन्तु दुबेजी महाराज तो उस बालक की ओर से पहले ही से भयत्रस्त थे। अत. उस बालक को ले आने का साहस दुबेजी को न हुआ। ईश्वर को छोड़ अब उस बालक का रक्षक और अभिभावक अन्य कोई न था। पीछे कहा जा चुका है कि, जन्मते ही उस बालक के मुख से राम राम निकला था, अत. उसकी धात्री दासी उसे "रामबोला" कहकर पुकारा करती थी। इससे अन्य लोग भी अब उस बालक को रामबोला कहा करते थे। अब तो वह, हरिपुर में, रामबोला के नाम ही से प्रसिद्ध हो गया था।

लगभग साढ़े पाँच वर्ष की उम्र का रामबोला अब हरिपुर की गलियों मे इधर उधर मारा मारा फिरता था। अपने घर में रखने से कहीं अपने ऊपर कोई विपत्ति न आ पड़े, इस भय से कोई भी ग्रामवासी रामबोला को अपने घर में रखने के लिये तैयार नहीं था। अत.

बरसात, जाड़ा और गर्मी की ऋतुओं में रामबोला जहाँ चाहता वहीं पड़ रहता था। उसकी देखरेख करने वाला और उसका सुख-दुःख पूँछनेवाला, हरिपुर में कोई भी मनुष्य न था। यद्यपि उस अबोध एवं अनाथ बालक की ऐसी शोचनीय दशा देख, ग्रामवासियों का मन द्रवीभूत हो जाता था, तथापि भावी भय के डर से उसको सहारा देने को कोई तैयार नहीं होता था। नीति में लिखा है—

'अरक्षित तिष्ठति दैवरक्षित"

अर्थात् जिसका कोई रक्षक नहीं होता, उसके रक्षक भगवान् होते हैं। वे ही किसी नर-देह-धारी जीव के हृदय में अनुकूल प्रेरणा कर, उसे उस अरक्षित का रक्षक बना देते हैं। ठीक यही दशा रामबोला की भी हुई। भगवान् ने एक वृद्धा ब्राह्मणी के मन में दया उपजायी और वह रामबोला के लिये अवलम्ब हो गयी। वही रामबोला को खिलाया पिलाया करती। प्रायः दो वर्षों तक रामबोला को उस वृद्धा ब्राह्मणी ने खिलाया पिलाया। दो वर्ष जब बीत गये, तब एक दिन नरहरि नामक एक साधु, अपनी जमात के साथ घूमते घामते, हरिपुर में आये और ग्रामवासियों से अनाथ रामबोला का वृत्तान्त सुन, उसे अपने साथ अयोध्या ले गये। अयोध्या में नरहरि ने रामबोला को अपना शिष्य बना लिया और उसका नाम तुलसीदास रख दिया।

नरहरि अयोध्या में लगभग दस मास तक हनुमानगढ़ी में रहे और बीच में उन्होंने अपने मेधावी बालक शिष्य तुलसीदासजी को पाणिनी के समस्त सूत्र कण्ठस्थ करा दिये। तदनन्तर वे साधु, तुलसीदासजी को साथ

लिये हुए शूकरक्षेत्र को चले गये। वहाँ रहने के दिनों में नरहरि ने सरयू और घाघरा के सङ्गम पर तुलसीदासजी को रामायण के रहस्यों की शिक्षा दी। तदनन्तर वहाँ से प्रस्थान करके वे भ्रमण करते हुए और तुलसीदासजी को साथ लिये हुए काशी में आये। उन दिनों काशी में एक सिद्ध तपस्वी रहते थे, जिनका नाम शेष सनातन था। शेषजी समस्त शास्त्रों के पारदर्शी थे। तुलसीदासजी की प्रतिभा देख शेषजी ने नरहरि से कहा—'आप इस बालक को मेरे पास छोड़ दें। मैं इसे पढ़ा कर ऐसा विद्वान बना दूँगा कि, इसके द्वारा आपका यश सारे जगत में व्याप्त हो जायगा।" नरहरिजी ने तुलसीदासजी को शेष सनातन के पास छोड़ दिया। शेष सनातन कुछ दिनों बाद काशी छोड़ चित्रकूट चले आये। चित्रकूट में तुलसीदासजी सहित शेष सनातन पन्द्रह वर्षों तक रहे और वहीं पर, गुरु सेवा-निरत तुलसीदासजी ने बड़े परिश्रम से विद्याभ्यास किया। अब तो तुलसीदासजी सर्व-शास्त्र-निष्णात हो गये। आचार्य शेष सनातन वृद्ध तो थे ही, अतः चित्रकूट ही में उन्होंने अपने नाशवान शरीर को त्याग, वैकुण्ठयात्रा की। अपने विद्यागुरु के चल बसने पर तुलसीदासजी के शोक की सीमा न रही। जब गुरु के अन्त्येष्टि कर्म से निवृत्त हुए; तब तुलसीदासजी अपने भावी कार्यक्रम पर विचार करने लगे।

अब तुलसीदासजी को उनकी जन्मभूमि के अनुराग ने अपनी ओर आकर्षित किया और वे चित्रकूट से अपने जन्मस्थान राजापुर को गये। वहाँ पहुँचने पर उनको अवगत हुआ कि, अब उनके घराने में कोई भी जीवित नहीं है। जिस विशाल भवन में उनके पिता और वहाँ के

राजापुर निवास करते थे, वह सब मिट्टी खण्डहर हो गया था। अपने जन्मस्थान और परिवार का खण्डहर होना अब देख सुन कर, तुलसीदासजी के मन पर बड़ी चोट लगी। किन्तु अब क्या हो सकता था? अस्तु शास्त्र-विद्वान तुलसीदासजी ने धर्मशास्त्र की मर्यादा को रखते हुए अपने पिता का श्राद्ध किया और गाँववालों के आग्रह करने पर, वे राजापुर में एक घर बना रहने लगे। राजापुर में रहने के दिनों में तुलसीदासजी रात दिन पूजा पाठ करते थे और नित्य ग्रामवासियों को भगवत्कथा सुना, उनको हरिभक्त बनाने का प्रयत्न किया करते थे। तुलसीदासजी पूर्ण पण्डित थे, तिस पर उनकी कथा कहने की प्रणाली भी अपूर्व थी। अतः तुलसीदासजी की कथा का लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था।

एक बार यमद्वितीया के पर्व पर कालिन्दी स्नान करने को, आसपास के गाँवों के रहनेवाले बहुत से लोग राजापुर में उपस्थित हुए। इन समागत जनों में यमुना पार के रहनेवाले एक गृहस्थ ब्राह्मण भी सकुटुम्ब वहाँ आये। यह ब्राह्मण भारद्वाजगोत्री थे। राजापुर में इन्होंने तुलसीदासजी के मुख से भगवत्कथा सुनी। तुलसीदासजी की कथा कहने की शैली पर वे ब्राह्मण महानुभाव मोहित हो गये और मन ही मन निश्चय कर लिया कि, मैं अपनी तनया का विवाह तुलसीदासजी ही से करूँगा। मन में ऐसा निश्चय करके भी उन्होंने उस समय इसके सम्बन्ध में किसी से कुछ कहा नहीं, किन्तु दूसरी बार जब वे फिर राजापुर में आये, तब तुलसीदासजी के सामने अपना विचार प्रकट किया। तुलसीदासजी विवाह करना नहीं चाहते थे, किन्तु जब उन्होंने बहुत आग्रह किया और राजापुर

वालों ने भी अनेक प्रकार से समझाया बुझाया, तब तुलसीदासजी ने विवाह करना स्वीकार किया और विवाह कर लिया।

विवाह के समय तुलसीदासजी का वय उन्तीस वर्ष का था। इस समय युवावस्था का उनके शरीर में पूर्ण विकास हो रहा था। सौभाग्यवश उनकी अर्द्धाङ्गिनी भी बड़ी रूपवती और गुणवती थी। अतः दोनों का समागम बड़ा सुखप्रद हुआ। अग्नि और घृत का मेल होते ही कामरूपी आग धधक उठी। तुलसीदासजी का ज्ञान, विज्ञान एवं भक्ति विरक्ति उस कामाग्नि में पड़ भस्म हो गयीं। अब के तुलसीदासजी विवाह के पूर्व के तुलसीदासजी नहीं थे। अब उनका मन पूजापाठ और कथावार्ता में नहीं लगता था। इस समय उनके नेत्र अपनी श्रेयसी प्रेयसी के मुखचन्द्र के चकोर बन गये थे। पत्नी का क्षण भर का भी वियोग उनको कल्प सम जान पड़ता था। इस प्रकार युवावस्था की रंगरेलियों में छः वर्ष बीत गये। अतः अब उनकी पत्नी के मन में माता पिता तथा परिवार के अन्य जनों को देखने की उत्कण्ठा का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था, किन्तु यह कैसे हो सकता था कि, तुलसीदासजी उसे एक क्षण के लिये भी आँखों की ओट होने देते। कहा जाता है, एक दिन जब तुलसीदासजी घर पर न थे, तब उनकी पत्नी अपने भाई के साथ मैके चल दी। घर लौटने पर उन्हें अपने नौकर से सब वृत्तान्त अवगत हुआ। पत्नी की विरहजन्य पीड़ा को सहन करना उनकी शक्ति के परे की बात थी, अतः अँधेरा हो जाने पर भी वे किसी तरह यमुना के उस पार जा पहुँचे। रात अधिक हो चुकी थी और उनकी ससुराल के सब लोग खा पीकर सो चुके थे।

पर घर का द्वार उन्मुक्त कराने को तुलसीदासजी देर तक अपनी स्त्री का नाम लेकर चिल्लाते रहे। इतने में उनकी पत्नी की निद्रा भङ्ग हुई और उसने अपने पति की बोली पहचान घर का द्वार खोल दिया। घर में घुस और अपनी पत्नी को सामने देख, तुलसीदासजी ऐसे ही प्रसन्न हुए, जैसे खोयी हुई मणि को पाकर मनुष्य प्रसन्न होता है। तुलसीदासजी तो प्रसन्न थे, किन्तु उनकी पत्नी की गर्दन मारे लाज के नीचे से ऊपर नहीं उठती थी। इतने में उसके सास ससुर भी जाग पड़े और घर पर दामाद का आना हुआ देख, उन लोगों ने तुलसीदासजी का भली भाँति आदर सत्कार किया। किन्तु उन लोगों को तुलसीदासजी की यह करतूत अखरी बहुत।

कुछ देर पीछे तुलसीदासजी की ससुराल में पुनः निद्रादेवी का अखण्ड राज्य स्थापित हुआ। किन्तु तुलसीदासजी को भला नींद कहाँ आने लगी। कुछ देर बाद उनकी पत्नी उनके निकट गयी और उनके पाँव दबाती हुई, मधुर किन्तु मर्मस्पर्शी शब्दों में वह अपने पति की इस अनुचित करतूत के लिये, भर्त्सना करने लगी। प्रवाद है कि, बातचीत के सिलसिले में पत्नी के मुख से निम्न दोहे निकल पड़े—

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ मैं नाथ॥
हाड माँस की देह मम, तापर जितनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम प्रति, तो न होत भव-भीत॥

होनहार की बात, पत्नी के उक्त दोहों ने विष के बुझे वाणों का काम किया। कुछ काल के लिये तुलसीदासजी के मन की दशा विचित्र हो गयी। तदनन्तर अज्ञान पर ज्ञान का विजय हुआ। अज्ञान का पर्दा उठा, उन्हें अपने चारों ओर, भगवान् श्रीरामजी की सौम्य मूर्ति देख पड़ने लगी। वे मन ही मन अपनी धर्मपत्नी की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे और तत्क्षण वहाँ से उठकर चल दिये।

उनका जाना घरवालों से छिपा न रह सका। अतः उनका साला उनको मनाता हुआ, बहुत दूर तक उनके साथ गया, किन्तु सवेरा होने पर भी जब तुलसीदास न लौटे; तब विवश हो, उनका साला लौट आया। घर पर लौटकर भाई ने देखा, बहिन अचेत पड़ी है। कुछ काल के शीतोपचार के अनन्तर बहिन की मूर्च्छा जब दूर हुई, तब उसने कहा—"मेरे आने का उद्देश्य आज पूरा हुआ। जब मेरे पति वन को चले गये, तब मैं यहाँ रहकर क्या करूँगी, मैं अब स्वर्ग के लिये प्रस्थान करूँगी।" कहा जाता है, यह कहकर उस साध्वी ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

इधर यह हुआ और उधर तुलसीदास तीर्थराज प्रयाग में आये और गृहस्थाश्रम को त्याग साधु हो गये। तदनन्तर वे अयोध्या गये और अयोध्या में कुछ दिनों रह, भ्रमण के लिये वहाँ से प्रस्थानित हुए। इस यात्रा में आपने भारतवर्ष के प्रसिद्ध धामों की यात्रा की। अन्त में वे बद्रिकाश्रम में पहुँचे। वहाँ से वे मानसरोवर, रूपाचल तथा नीलाचल गये। वहाँ से कैलास पर्वत की परिक्रमा कर

वे नीचे उतर आये और अपने घर को लौट गये। इस तीर्थाटन में तुलसीदास के आयु के चौदह पन्द्रह वर्ष निकल गये।

घर पर लौटकर उन्होंने चातुर्मास किया। नित्य ही भगवत्कथा हुआ करती थी। वनवासी साधु सन्त महात्मा रामकथा सुनने को तुलसीदास जी के निकट नित्य ही आया करते थे। उनके भवन के निकट के वन में एक वृक्ष था, जिस पर एक प्रेत रहता था। शौच के अनन्तर लोटे में जो जल रहता, उसे वे उसी वृक्ष के नीचे नित्य गिरा दिया करते थे। उस जल से प्रेत परितृप्त हुआ और प्रकट हो उसने तुलसीदासजी से कहा—"आप जो कहें मैं वही करने को तैयार हूँ।" इसके उत्तर में तुलसीदासजी ने श्रीरामजी के दर्शन की लालसा प्रकट की। इस पर प्रेत बोला—'आप जब रामकथा बाँचते हैं, तब कोढ़ी के वेश में हनुमानजी आते हैं। यदि आप उनको पकड़ें तो आपका मनोरथ पूर्ण हो सकता है।' तुलसीदासजी ने ऐसा ही किया। कहा जाता है, पवननन्दन उन पर प्रसन्न हो गये और बोले—"आप चित्रकूट चलें, वहीं आपको श्रीरामजी के दर्शन होंगे।" तुलसीदासजी चित्रकूट पहुँचे। एक दिन जब तुलसीदासजी चित्रकूट की प्रदक्षिणा कर रहे थे, तब उन्होंने देखा कि, दो राजकुमार घोड़ों पर सवार हो आखेट खेल रहे हैं। उनकी छवि को देख, तुलसीदास आश्चर्य चकित हो गये। पश्चात हनुमानजी के बतलाने पर उन्होंने जाना कि, वे दोनों अश्वारोही राजकुमार ही श्रीराम और श्रीलक्ष्मण थे। साथ ही यह भी कहा कि, "कल प्रातःकाल पुनः आपको उनके दर्शन होंगे।' तदनुसार अगले दिन बड़े तड़के ही तुलसीदासजी चित्रकूट की

पयस्विनी नदी के घाट पर जा डटे और बड़े प्रेम से चन्दन घिसने लगे। इतने में वहाँ एक बालक पहुँचा और तुलसीदासजी से चन्दन माँगा। उस बालक की रूपछटा देख, वे अवाक् हो गये। उन्हें अपने शरीर की सुधि तक न रही। चन्दन रगड़ना भूल गये। उनके नेत्रों में अश्रु रूपी बर्षाती सरिता उमड़ पड़ी। उधर हनुमानजी ने शुक बन, तुलसीदास को सङ्केत करने के लिये निम्न दोहा पढ़ाः—

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुबीर॥

वह बालक चन्दन माँग रहा था, किन्तु तुलसीदास को सुधि ही न थी कि वे चन्दन देते। वे एकटक उस बालक को निहार रहे थे। उनकी यह दशा देख, उस बालक ने स्वयं चन्दन उठाकर अपने माथे पर लगा लिया और देखते ही देखते वह अन्तर्धान हो गया। उस दिन सारे दिन तुलसीदासजी भगवान की उस बालमूर्ति का ध्यान करते रहे। जब रात हुई, तब हनुमानजी ने आकर उनको सचेत किया। चित्रकूट के रामघाट पर तुलसीदासजी कुछ दिनों रहे। तदनन्तर वे सौमित्र पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ जाते समय रास्ते में एक सफेद साँप पड़ा हुआ उन्हें मिला। तुलसीदासजी की दृष्टि पड़ते ही उसके पूर्वजन्म के पाप नष्ट हो गये। जहाँ वह सर्प पड़ा था, वहाँ अब योगश्री नामक एक तपस्वी बैठा हुआ देख पड़ा। उसने अपना पूर्व वृत्तान्त कहा।

इस घटना का वृत्तान्त विद्युत् वेग से सर्वत्र प्रचारित हो गया। इसका फल यह हुआ कि, तुलसीदासजी के दर्शन करने को जनता की

भीड़ उमड़ पड़ी। अब तो उनके भगवद्भजन में बड़ी बाधा पड़ने लगी। यह देख, उन्होंने एक कन्दरा का आश्रय ग्रहण किया। वे अपना अधिकाल उस कन्दरा में रहकर बिताते थे और बहुत थोड़े समय के लिये उसके बाहिर आते थे। इससे दर्शनार्थी साधु सन्तों को बड़ी असुविधा होती थी। लोग दर्शन करने आते थे और दर्शन न होने पर हताश हो लौट जाते थे। एक दिन तत्कालीन एक सुप्रसिद्ध महात्मा (हरिवानन्दजी) भी दर्शन करने उनके यहाँ गये। जब दर्शन न मिले, तब आसन मार वे उस गुफा के द्वार पर डट गये। जब लघुशङ्का करने का तुलसीदासजी गुफा से निकले, तब उन महात्मा ने उनसे कहा—"भगवन्! यह तो बड़ा ही अनुचित कार्य आप करते हैं। लोग बड़े भक्तिभाव से और दूर दूर से आपके दर्शन करने आते हैं और आप गुफा में छिपे बैठे रहते हैं। इससे लोगों को बड़ा कष्ट होता है। अत यदि आप आज्ञा दें, तो मैं यहाँ एक मचान बनवा दूँ। उस पर आप दिन भर रहा करें और लोगों को दर्शन दिया करें।" भगवद्भक्त तुलसीदास भला किसी को कष्ट में क्योंकर देख सकते थे। उन्होंने उस दिन से वैसा ही किया। अब तो नित्य ही दूर दूर से साधु सन्त महात्मा तुलसीदासजी के निकट सत्सङ्ग के लिये एकत्र होने लगे। इस प्रकार सौमित्र पर्वत पर रह और साधु-समागम में तुलसीदासजी के आठ वर्ष और निकल गये।

तदनन्तर वे उस पर्वत को छोड़, कामद गिरि पर जाकर रहे। कहा जाता है यहीं पर गोस्वामी गोकुलनाथ के भेजे महाकवि सूरदासजी,

तुलसीदासजी से आकर मिले थे और निज रचित सूरसागर उनको दिखलाया था। सूरसागर की भावमयी सरस रचना देख, तुलसीदासजी बहुत प्रसन्न हुए थे। कामदगिरि पर तुलसीदासजी बहुत दिनों नहीं रह सके। हनुमानजी के कथनानुसार उन्हें चित्रकूट छोड़, अयोध्या जाना पड़ा। रास्ते में वे प्रयाग में मकर मास भर रहे। तदन्तर वे काशी में बाबा विश्वनाथ के दर्शन करने गये। विश्वनाथ का दर्शन कर, वे अयोध्या गये। अयोध्या में एक विशाल वट वृक्ष के नीचे बनी हुई एक कुटी में तुलसीदासजी रहने लगे। यहीं रहने के दिनों में तुलसीदासजी के मन में राम चरित-मानस की रचना करने का विचार उत्पन्न हुआ। तदनुसार उन्होंने संवत् सोलह सौ इकतीस विक्रमीय में रामनवमी के दिन मानस की रचना में हाथ लगाया और दो वर्ष सात मास और छब्बीस दिनों में मानस को सात काण्डों में बनाकर पूर्ण किया। संयोगवश ग्रन्थ समाप्त होने पर मिथिला के प्रसिद्ध महात्मा रूपारुण स्वामी अयोध्या में आये। अतः तुलसीदासजी ने अधिकारी समझ, सर्वप्रथम राम-चरित-मानस की कथा उन्हीं रूपारुण स्वामी को सुनायी। तदनन्तर अन्य लोगों ने मानस की कथा सुनी, इस ग्रन्थ को प्रतिलिपि कर और बहुत से लोग ले गये। तुलसीदासजी ने मानस की स्वयं भी कई प्रतिलिपियाँ कीं। काशी के कतिपय दुराग्रही पण्डित तुलसीदासजी को संस्कृत के विद्वान होकर भाषा में ग्रन्थप्रणयन करते देख, उन पर बहुत बिगड़े, किन्तु मधुसूदन सरस्वती राम-चरित-मानस को देख, बहुत प्रसन्न हुए और ग्रन्थकार की प्रशंसा में निम्न श्लोक रचा:—

आनन्द कानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसी तरुः ।
कविता मञ्जरी यस्य रामभ्रमर भूषिता ॥

राम चरित-मानस की कीर्ति धीरे धीरे फैलने लगी। प्रारम्भ में काशी के जो पण्डित तुलसीदासजी के शत्रु हो गये थे, वे भी धीरे धीरे उनके साथ विरोध करना छोड़ बैठे। तुलसीदासजी काशी में असी घाट पर ठाकुर टोडरमल के बनाये एक नये भवन में रहने लगे और यहीं पर रहते समय उन्होंने 'विनयपत्रिका" की रचना की।

काशी में कुछ दिनों रहकर 'तुलसीदासजी' ने मिथिला की यात्रा की। रास्ते में अनेक तीर्थों में गये। अनेक जनों से भेंट हुई। लोगों ने उनका मन खोलकर आदर सत्कार किया। संवत् १६४० में तुलसीदासजी पुन काशी लौट आये। काशी लौटकर तुलसीदासजी ने इसी वर्ष में इस दोहावली का संग्रह किया। यथा—

मिथिला तें काशी गये, चालिस संवत लाग।
दोहावलि संग्रह किये, सहित विमल अनुराग॥

—मूल-गोसाँई-चरित।

प्रवाद है कि, एक दिन एक अघोरी सिद्ध तुलसीदासजी के द्वार पर आकर "अलख अलख" पुकारने लगा। तब अनखा कर, तुलसीदासजी ने यह दोहा पढ़ा—

हम लख हमहि हमार लख, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै, रामनाम जपु नीच॥

इस दोहे को सुन उस अघोरपन्थी का भ्रमान्धकार नष्ट हुआ और वह अघोरपन्थ छोड़ तुलसीदासजी का शिष्य बन गया।

कहा जाता है, तत्कालीन अमर नामक किसी जोगी की स्त्री को कोई वैरागी उड़ा ले गया। इस पर उस दिन से वह जोगी वैरागियों की कण्ठी माला बरजोरी छीनने लगा। इसको ले वैरागियों में बड़ी हलचल मची। वैरागी जुड़ बटुर कर तुलसीदासजी के निकट गये और अपना दु:खड़ा रोया। तब उन्होंने उस जोगी को समझा बुझाकर शान्त किया और वैरागियों की कण्ठी-मालाएँ लौटवा दीं।

कुछ दिनों पीछे तुलसीदासजी पुन: यात्रार्थ काशी से चल दिये। इस बार की यात्रा में वे अयोध्या, वाराहक्षेत्र, लखनऊ, मलिहाबाद, सण्डीला, बिठूर और खैराबाद होते हुए वृन्दावन पहुँचे। उनके वृन्दावन में पहुँचने पर वहाँ बड़ी चहल-पहल रही। दर्शनार्थी भक्तों की भीड़ उमड़ पड़ी। वृन्दावन में उनकी नाभादासजी से भेंट हुई। भक्तप्रवर नाभादासजी ने उनका सन्मान किया।

वृन्दावन से लौट तुलसीदासजी चित्रकूट में रहे। यहीं रहने के समय दिल्लीश्वर का भेजा एक खवास चित्रकूट आकर तुलसीदासजी को दिल्ली लिवा ले गया। मार्ग में ओड़छा में कवि केशवदासजी के आत्मा को उन्होंने प्रेतयोनि से मुक्त किया। दिल्ली में तत्कालीन मुसलमान बादशाह ने तुलसीदासजी का बड़ा सन्मान किया और अन्त में कुछ करामात दिखलाने की प्रार्थना की। इस पर गोस्वामीजी

ने कहा—"मैं रामनाम को छोड़ कोई करामात नहीं जानता।" इस पर राज-मद मत्त बादशाह तुलसीदासजी पर अप्रसन्न हुआ और उन्हें कैद कर दिया। साथ ही कहा—"तब तक तुम करामात न दिखलाओगे, तब तक तुम छोड़े न जाओगे।" प्रवाद है कि, इस पर तुलसीदासजी ने हनुमानजी की स्तुति की और कहा—

तोहि न ऐसो बूझिये, हनुमान हठीले।
साहब काहु न राम से, तुमसे न वसीले॥

कहा जाता है, इसका फल यह हुआ कि, न मालुम किधर से असंख्य वानरदल दिल्ली में प्रकट हो गया और शाहीमहल के कंगूरों पर चढ़, विविध प्रकार के उत्पात करने लगा। अन्तःपुर-वासिनी बेगमों के शरीरों पर से वस्त्र नोंच डाले। यहाँ तक कि, स्वयं बादशाह को भी इन वानरों के अत्याचार का लक्ष्य बनना पड़ा। महलों में बड़ी हलचल मची। अन्त में बादशाह ने तुलसीदासजी के निकट जा क्षमा माँगी। तब कहीं वानरी उत्पात शान्त हुआ। इस पर बादशाह तुलसीदासजी पर बहुत प्रसन्न हुआ और बड़े आदर सत्कार के साथ उनको पीनस पर सवार करा दिल्ली से विदा किया। रास्ते में महावन में तुलसीदासजी की भेंट मलूकदास से हुई। अन्त में तुलसीदासजी काशी लौट आये।

यह दिल्ली-यात्रा तुलसीदासजी की अन्तिम यात्रा थी। अब वय भी उनकी सौ के ऊपर हो चुका था। अतः उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग शिथिल हो गये थे। काशी में रह, वे नित्य गङ्गास्नान करते थे और भगवद्भजन किया करते थे। प्रवाद है कि, माघ मास में एक दिन तुलसीदासजी गङ्गास्नान कर जल में खड़े मन्त्रजाप कर रहे थे। वृद्धावस्था के कारण उनका शरीर काँप रहा था। वहाँ से कुछ दूर हट, एक वेश्या खड़ी यह सब देख रही थी और तुलसीदासजी

को मन्दमति समझ, हँस रही थी। जब वे जप पूर्ण कर, ऊपर आ गीले कपड़े निचोरने लगे, तब दैवसंयोग से कपड़े निचोरने के कुछ छींटे उस वेश्या के शरीर पर पड़े। वह छींटे क्या थे, मानों ज्ञानाञ्जन की शलाका थे। वेश्या के अज्ञान का पर्दा हट गया। उसके ज्ञान-चक्षु खुल गये। निज पाप मूर्तिमान हो उसके ज्ञानचक्षुओं के सामने ताण्डव नृत्य करने लगे। वेश्या सहम गयी। उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और वह तुलसीदासजी के चरणों पर गिर पड़ी। उसने वेश्यावृत्ति त्याग दी और तुलसीदासजी से उपदेश ग्रहण कर एवं रामनाम जपती हुई, वह पवित्र जीवन व्यतीत करने लगी।

सं० १६७० में जहाँगीर बादशाह तुलसीदासजी से मिलने काशी आया था। उसने तुलसीदासजी को एक बड़ी जागीर और विपुल धन-राशि देनी चाही थी, किन्तु उन्होंने लेना स्वीकार न किया।

एक बार बीरबल की चर्चा चलने पर तुलसीदासजी ने खेद प्रकट करते हुए कहा था कि, "ऐसो विलक्षण बुद्धि पाकर भी वह भगवद्भक्त न हो पाया।"

एक दिन की घटना है कि, एक हत्यारा तुलसीदासजी के निकट गया और रामराम कह खड़ा रहा। उस हत्यारे के मुख से रामनाम सुन, तुलसीदासजी उस पर यहाँ तक प्रसन्न हुए कि, उसे बड़े आदर के साथ भोजन कराये और उससे कहा—

तुलसी जाके मुखनि तें, धोखेहु निकसे राम।
ताके पग की पैतरी, मेरे तनु को चाम॥

एक हत्यारे का तुलसीदासजी द्वारा इस प्रकार आदर होते देख, काशी के शुष्क पाण्डित्य के अभिमान में चूर एवं भगवद्भक्ति के रहस्य से शून्य, पण्डित, साधु, सन्यासी तथा अन्य प्रतिष्ठित जन, तुलसीदासजी के स्थान पर शाम को एकत्र हुए और पूँछा कि, "यह हत्यारा कैसे शुद्ध हो गया?"

उत्तर में तुलसीदासजी ने कहा—"रामनाम के प्रताप से। यदि विश्वास न हो तो वेद पुराण खोलकर देख लो।"

इस पर उन लोगों ने कहा—"लिखा तो जाने क्या क्या है, पर इसके शुद्ध होने का हमें विश्वास कैसे हो? प्रत्यक्ष प्रमाण दीजिये। यदि विश्वनाथ का नाँदिया इसके हाथ का छुआ अन्न खा ले, तो हम लोगों को विश्वास हो सकता है।"

यह सुन तुलसीदासजी ने ऐसा ही करवा कर सब को दिखलाया। उस शुद्ध हुए हत्यारे के हाथ से नाँदिया ने अन्न खा लिया। इस चमत्कार को देख, वे सब लज्जित हो गये और तुलसीदासजी के चरणों में गिर उन सब ने क्षमा माँगी।

धीरे धीरे तुलसीदासजी का अन्तिम समय आ पहुँचा। उनका वय सवा सौ से ऊपर पहुँच चुका था। जिस उद्देश्य से उनका इस संसार में आगमन हुआ था, वह कार्य भी अब पूर्ण हो चुका था। अतः अब उनके महाप्रस्थान की घड़ी उपस्थित हुई। अन्तिम काल में उन्होंने यह निम्न दोहा पढ़ा—

रामचन्द्र जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अब ही तुलसी सौन॥

यह दोहा पढ़ और मुख से रामराम का उच्चारण करते हुए गोस्वामी उस धाम को सिधार गये जहाँ रोग, शोक, चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, परनिन्दा, लम्पटता, परवञ्चना का नाम निशान भी नहीं है।

सम्वत् सोलह सौ असी, असी गङ्ग के तीर।
श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

—मूल गोसाँई-चरित।

उक्त दोहे के अनुसार परलोक यात्रा के समय तुलसीदासजी का वयक्रम लगभग एक सौ सत्ताइस वर्षों का था।

श्रीहरिः

दोहावली

मङ्गलाचरण

(१)

राम बाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर॥

शब्दार्थ—कल्पतरु=कल्पवृक्ष। यह वृक्ष देवराज इन्द्र के नन्दन-कानन मे है और देवताओं की समस्त मनोकामनाओं को इच्छा मात्र से पूर्ण करता है।

विशेष ज्ञातव्य—यह पद्य दोहा नामक छन्द है। इस छन्द में चार चरण होते हैं। पहले और तीसरे चरणों में तेरह तेरह, और दूसरे तथा चौथे चरणों मे ग्यारह ग्यारह मात्राएँ होती हैं। इस ग्रन्थ का अधिकांश भाग दोहा छन्द में होने से इसका नाम "दोहावली' पड़ा है। दोहावली का अर्थ है—दोहों की अवली अर्थात् पंक्ति। इसमें कहीं कहीं सोरठा छन्द भी है। दोहा और सोरठा में कुछ भी अन्तर नहीं है। क्योंकि दोहा यदि उलट दिया जाय तो वह सोरठा छन्द बन जाता है।

नोट—आदिकाल से आस्तिक कवियों की यह परिपाटी है कि, वे स्वरचित ग्रन्थ का आरम्भ अपने इष्टदेव की प्रार्थना के साथ करते हैं। अत' गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस दोहावली के आरम्भ के तीन दोहों में श्रीरामचन्द्रजी के त्र्यायतन ध्यान द्वारा ग्रन्थ का मङ्गलाचरण किया है।

श्रीरामचन्द्र जी ग्रन्थकार के आराध्यदेव थे । क्योंकि ग्रन्थकार श्रीरामानुज सम्प्रदाय की परम्परा में से एक थे । श्रीरामानुज सम्प्रदाय के अनुयाइयों के लिए अपनी अपनी रुचि के अनुसार श्रीमन्नारायण, श्रीरामचन्द्र श्रीनृसिंह अथवा श्रीकृष्ण—कोई भी आराध्य अथवा इष्टदेव हो सकता है । अतः गोस्वामी तुलसीदास जी के आराध्यदेव श्रीरामचन्द्रजी थे ।

अलङ्कार-परिचय—श्रीरामचन्द्र जी की ज्यायतन मूर्ति और सुरतरु के गुणों की तुलना समान रूप से किये जाने के कारण, इस दोहे में सामान्यालङ्कार है ।

(२)

सीता लषन समेत प्रभु, सोहत तुलसीदास ।
हरषत सुर बरषत सुमन, सगुन सुमङ्गल वास ॥

शब्दार्थ—समेत=सहित, साथ । सुर=देवता । सुमन=फूल ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे के पूर्वार्द्ध में सकार की आवृत्ति से वृत्यनुप्रास और उत्तरार्द्ध में 'रषत' की दो बार आवृत्ति होने के कारण छेकानुप्रास अलङ्कार है ।

(३)

पञ्चवटी वट-विटप-तरु, सीता-लषन-समेत ।
सोहत तुलसीदास प्रभु, सकल सुमङ्गल देत ॥

शब्दार्थ—पञ्चवटी=वह स्थान विशेष, जो बम्बई के निकट नासिक जिले में है और जहाँ पर पाँच वट या बरगद के पेड थे । वनवास के दिनों में श्रीरामचन्द्र जी कुछ दिनों पञ्चवटी में रहे थे । इसी स्थान पर रावण द्वारा सीता हरी गयी थीं । पञ्चवटी वट-विटप तरु=पञ्चवटी में बरगद के पेड़ के नीचे ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे वृत्यनुप्रास अलङ्कार तथा "त्रिटप" एवं 'तरु' में पुनरुक्ति-वदाभास अलङ्कार है।

श्रीरामनाम-जप का उपदेश

(४)

चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सिय-लषन-समेत।
राम नाम जप जापकहिं, तुलसी अभिमत देत॥

शब्दार्थ—चित्रकूट=बुँदेलखण्ड प्रान्त मे बाँदा नामक जिले मे चित्रकूट एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। अयोध्या से चल श्रीरामचन्द्र जी सर्वप्रथम कुछ काल तक इसी स्थान में रहे थे और यही पर भरत जी को श्रीरामचन्द्र जी की चरणपादुका मिली थीं। यह प्रवाद है कि गो० तुलसीदास को यही पर श्रीरामचन्द्र भगवान् के दर्शन हुए थे। जापक=जप करने वाला। अभिमत=इच्छित, चाहा हुआ, वाञ्छित।

(५)

पय अहार फल खाइ जपु, राम नाम षट मास।
सकल सुमङ्गल सिद्धि सब, करतल तुलसीदास॥

शब्दार्थ—पय=दूध, पानी। षटमास=छः महीने। सिद्धि=सफलता अथवा योग की आठ सिद्धियाँ—जिनके नाम ये हैं.—

१ अणिमा, २ महिमा, ३ गरिमा, ४ लघिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य, ७ ईशित्व और ८ वशित्व। करतल=हस्तगत।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे हेत्वालङ्कार है।

(६)

राम नाम-मनि-दीप धरु, जीह-देहरी-द्वार।
तुलसी भीतर वाहिरो, जो चाहसि उजियार॥

शब्दार्थ—जीह = जिह्वा। देहरी = दरवाजे की चौखट का नीचे का भाग। उजियार = प्रकाश।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे रूपकालङ्कार है।

नोट—इस दोहे का तात्पर्य यह है कि रामनाम का जप करने से शरीर का अन्तःकरण और वाह्य—दोनों ही पवित्र हो जाते हैं।

(७)

हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहुं पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम॥

शब्दार्थ—हिय = हृदय। निर्गुन = हेय गुणों से रहित। नयनन्हि = नेत्रों मे। सगुन = अच्छे गुणों से युक्त अर्थात् वात्सल्य, दया, भक्तप्रियता आदि। रसना = जिह्वा। पुरट = सोना, सुवर्ण। सम्पुट = डिबिया, डब्बा। ललित = सुन्दर। ललाम = रत्न, आभूषण, चिन्ह।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे रूपक और उत्प्रेक्षा दोनों ही अलङ्कार हैं।

विशेष—इस दोहे का भावार्थ यह है कि हृदय में भगवान की निर्गुन और नयनों में सगुन मूर्ति विराज रही है और नयनों और हृदय के बीच

मुख में सुन्दर रामनाम रटती हुई जिह्वा है। यह जिह्वा ऐसी मालूम होती है, मानों सोने की बंद डिबिया में कोई सुन्दर गहना रक्खा हो।

(८)

सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं, निर्गुन मन तें दूरि।
तुलसी सुमिरहु राम को, नाम सजीवन-मूरि॥

शब्दार्थ—सरस=रसीली। सजीवनमूरि=जीवनी शक्ति उत्पन्न करने वाली जड़ी विशेष। रुचि=चाह।

श्रीरामनाम को उत्कृष्टता

(९)

एक छत्र इक मुकुटमनि, सब वरनन पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥

शब्दार्थ—छत्र=छाता। वरन=वर्ण, अक्षर। मुकुट=राजाओं के सीस का ताज।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

नोट—श्रीरामचन्द्रजी के नाम के दोनों अक्षर अर्थात् "र' और म" समस्त वर्णों अर्थात् अक्षरों के ऊपर छत्र और मुकुट की तरह विराजते है।

इसका तात्पर्य यह है कि राम का रकार जब संयुक्ताक्षर के साथ मिलता है; तब रकार की गति ऊर्ध्व हो जाती है और अगले अक्षर पर

रेफ(ˇ) के रूप में वह छत्राकार सा जान पड़ता है। इसी प्रकार मकार भी ऊर्ध्वगति को प्राप्त कर चन्द्रबिन्दु (ँ) हो जाता है। यह मुकुट मणि का बोधक है। अतएव रकार और मकार का स्थान समस्त वर्णों में उच्च है। इसीसे सर्वोत्तम अक्षरों के मेल से बना हुआ शब्द 'राम' सर्वोत्तम है।

(१०)

राम नाम को अङ्क है, सब साधन है सून।
अङ्क गये कछु हाथ नहिं, अङ्क रहे दसगुन॥

शब्दार्थ—सून=शून्य, सिफ़र, ज़ीरो। साधन=उपाय।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में सामान्य अलङ्कार है।

नोट—इस दोहे का भावार्थ यह है कि, भगवत्प्राप्ति के जितने साधन हैं, उनमें रामनाम का जपरूप साधन अङ्क है, अन्य सब साधन शून्य—सिफर हैं। यदि शून्य के पास से अङ्क अलग कर लिया जाय, तो शून्य के सिवाय कुछ भी हस्तगत नहीं होता। किन्तु यदि वही शून्य अङ्क के साथ मिला दिया जाय तो वह दस गुने का बोधक हो जाता है। सारांश यह कि जैसे अङ्क के बिना शून्य व्यर्थ है, वैसे ही रामनाम के बिना अन्य समस्त साधन निष्फल हैं।

श्रीरामनाम माहात्म्य

(११)

नाम राम को कल्पतरु, करि कल्यान-निवास।
जो सुमिरत भये भाँग तें, तुलसी तुलसीदास॥

शब्दार्थ—कल्याण-निवास=कल्याण का घर।

जो सुमिरत भये ··तुलसीदास=अर्थात् श्रीरामनाम को स्मरण करने से भाँग जैसे हेय पदार्थ सदृश तुलसीदास, पूज्य तुलसी वृक्ष के समान पुनीत एवं पूज्य हो गये।

(१२)

राम नाम जपि जीह जन, भये सुकृत सुखसालि।
तुलसी इहाँ जो आलसी, गयो आजु की कालि॥

शब्दार्थ—जन=भक्त। सुकृत=पुण्य। सुखसालि=सुखशाली, हर्षयुक्त।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे के पूर्वार्द्ध में वृत्यनुप्रास और उत्तरार्द्ध मे लोकोक्ति अलङ्कार है। साथ ही इसमें परिणाम अलङ्कार भी है।

(१३)

नाम गरीबनिवाज को, राज देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं, घुरबिनिया की बानि॥

शब्दार्थ—गरीबनिवाज=दीनदयालु। घुरबिनिया=घूरे पर पड़े हुए दानों को बीन कर अपना निर्वाह करने वाला। बानि=आदत।

नोट—श्रीरामजी का नाम—जपनेवाले भक्त को इहलोक में सर्वोच्च

राजपद्वी तक दे देता है। किन्तु जिन लोगों की सुरविनिया जैसी आदत पड़ गयी है, वे बिना दर दर माँगे नहीं बाज़ आते। तात्पर्य यह है कि, रामभक्त को अनन्य होना चाहिये। रामभक्त को देवतान्तर पूजन करने की आवश्यकता नहीं है। इस दोहे में गोस्वामी जी ने एक प्रकार से अनन्यता को पुष्ट किया है।

(१४)

कासी विधि बसि तनु तजै, हठ तन तजै प्रयाग।
तुलसी जो फल सो सुलभ, रामनाम अनुराग॥

शब्दार्थ—सुलभ=सहज में प्राप्त। अनुराग=भक्ति।

(१५)

मीठो अरु कठवति भरो, रौताई अरु खेम।
स्वारथ परमारथ सुलभ, रामनाम के प्रेम॥

शब्दार्थ—कठवति=कठौती, काठ का बना कूँडीनुमा बड़ा पात्र। रौताई=मालकाना, प्रभुत्व, प्रभुता। खेम=क्षेम अर्थात् प्राप्त पदार्थ की रक्षा। परमारथ=मोक्ष।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में लोकोक्ति अलङ्कार है।

(१६)

राम नाम सुमिरत सुजस, भाजन भये कुजाति।
कुतरु कुसरु पुर राजमग, लहत भुवन विख्याति॥

पाठान्तर

राम नाम सुमिरत सुजस, भाजन भये कुजाति ।
कुतरुक-सुरु पुर राजमग, लहत भुवन विख्याति ॥१६॥

शब्दार्थ—भाजन=पात्र । कुतरु=बबूलादि बुरे पेड या ठूँठ या टेढा मेढ़ा पेड़ । कुमरु=बुरा तालाब । पुर=पुरवा, छोटा गाँव । राजमग=राजमार्ग, आम बड़ी सडक ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे उल्लास अलङ्कार है ।

(१७)

स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम, परमारथ न प्रवेश ।
राम नाम सुमिरत मिटहि, तुलसी कठिन कलेस ॥

पाठान्तर

स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम, परमारथ परवेस ।
रामनाम सुमिरत मिटहिँ, तुलसी कठिन कलेश ॥१७॥

शब्दार्थ—स्वारथ=साँसारिक पदार्थ । अगम=दुर्लभ । प्रवेस=पैठ, पैसार, प्रवेश ।

(१८)

'मोर मोर' सब कहँ कहसि, तू को कहु निज नाम ।
कै चुप साधहि सुन समुझि, कै तुलसी जपु राम ॥

शब्दार्थ—चुप साधहि=चुप्पी लगा, चुप रह ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे विकल्पालङ्कार है ।

(१९)

हम लख हमहिं हमार लख, हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखहि का लखहि, राम नाम जपु नीच ॥

शब्दार्थ—लख = जो दिखलायी दे सके अर्थात् मूर्तिमान, दृश्य पदार्थ । अलख = अदृश्य, अमूर्ति, जो देखने मे न आवे ।

विशेष—प्रवाद है कि एक बार अलख अलख पुकारता हुआ एक कापालिक भिक्षुक तुलसीदासजी की कुटी के पास जा निकला और अलख अलख कह चिल्लाने लगा । तब उस भिक्षुक का भ्रम दिखलाने के लिये तुलसीदासजी ने यह दोहा पढ़ा था । कहते हैं, इस दोहे को सुन वह भिक्षुक तुलसीदासजी को अलौकिक महात्मा समझ उनके पैरों पर गिर पड़ा था ।

इस दोहे का अर्थ इस प्रकार है —

हम हमार के बीच = अपने और अपनी माया के बीच, मैं अपने को स्वय देखता हूँ । तू भी (हमार लख) मेरी माया को लख यानी देख, किन्तु जो अलख अर्थात् अदृश्य है—उसे तुलसीदास क्या देखे ? तात्पर्य यह है कि, जो नयनगोचर नहीं, उसको कोई देख ही क्या सकता है, अतः सगुण श्रीरामजी जो साकार हैं, उन्हीको, अरे नीच ! सदा तू भजा कर और अलख अलख चिल्लाना छोड़ दे ।

(२०)

रामनाम अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस ।
बर्षत बारिद बूंद गहि, चाहत चढ़न अकास ॥

शब्दार्थ—अवलम्ब = सहारा । बारिद = बादल । गहि = पकड़ कर ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अनुप्रास के साथ साथ दृष्टान्त-अलङ्कार भी है।

(२१)

तुलसी हठि-हठि कहत नित, चित सुन हितकर मानि।
लाभ राम सुमिरन बड़ो, बड़ो बिसारे हानि॥

शब्दार्थ—हठि-हठि=आग्रह पूर्वक, हठ-पूर्वक। हितकर=कल्याणकर। बिसारे=भूले।

(२२)

बिगरी जन्म अनेक की, सुधरे अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु॥

शब्दार्थ—कुसमाजु=बुरे लोगों का समाज या समूह।

(२३)

प्रीति प्रतीति सुरीति सों, रामनाम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो, आदि मध्य परिनाम॥

शब्दार्थ—प्रतीति=विश्वास। सुरीति=भली भाँति। परिणाम=अन्त।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में लाटानुप्रास अलङ्कार है।

श्रीरामनाम का श्रेष्ठत्व

(२४)

दम्पति रस रसना दसन, परिजन बदन सुगेह।
तुलसी हरहित बरन सिसु, सम्पति सहज सनेह॥

शब्दार्थ—दम्पति=स्त्री पुरुष का जोड़ा। रस=षटरस या काव्य के नवरस। दसन=दाँत। परिजन=परिवार के लोग। वदन=मुख। सुगेह=सुन्दर घर। हर हित-बरन=शिवजी का हित करने वाले वर्ण या अक्षर अर्थात् राम। सहज=स्वाभाविक।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपक अलङ्कार है।

दोहे का अर्थ—मुख तो सुन्दर घर है और दाँत उस घर में रहने वाले परिवार के जन हैं। रस और रसना—स्त्री और पुरुष का जोड़ा है और उसके संयोग से उत्पन्न हुए तथा महादेवजी का हित करने वाले प्रिय अक्षर रा और म हैं। अर्थात् ये दोनों उक्त जोड़े के सन्तान हैं। इन दोनों रामनाम रूपी सन्तानों के प्रति सहज प्रेम ही उक्त घर की सम्पत्ति है अथवा शोभा है।

(२५)

बरषाऋतु रघुपति-भगति, तुलसी सालि सुबास।
रामनाम बरबरन जुग, सावन भादौं मास॥

शब्दार्थ—सालि=शालि, धान। सुबास=सुगन्ध, खुशबू। बर=श्रेष्ठ। जुग=दो।

रामनाम बरबरन जुग=रामनाम के दोनो रा और म अक्षर।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपक अलङ्कार है।

(२६)

राम नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकालु।
जापक-जन प्रहलाद जिमि, पालहिं दलि सुरसालु॥

शब्दार्थ—नरकेसरी=नृसिंह भगवान। कनककसिपु=हिरण्य-कश्यप। दलि=मारकर। सुरसाल=राक्षस जो देवताओं को दुख देने वाले हैं।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे उपमा अलङ्कार है।

(२७)

रामनाम कलि कामतरु, सकल सुमङ्गल कन्द।
सुमिरत करतल सिद्धि सब, पग पग परमानन्द॥

शब्दार्थ—कन्द=आनन्दप्रद। परमानन्द=अतिशय आनन्द।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे निदर्शन-अलङ्कार है।

(२८)

राम नाम कलि कामतरु, रामभगति सुरधेनु।
सकल सुमङ्गल मूल जग, गुरुपद पङ्कज रेनु॥

शब्दार्थ—सुरधेनु=कामधेनु। यह स्वर्गीय गौ है, जो विना ब्याये ही सदैव दूध दिया करती है। पङ्कजरेनु=कमल की धूल।

(२९)

जथा भूमि सब बीज में, नखत-निवास अकास।
रामनाम सब धरम में, जानत तुलसीदास॥

शब्दार्थ—नखत=नक्षत्र।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण-अलङ्कार है।

अर्थ—जिस प्रकार पृथिवी सूक्ष्म रूप से समस्त अंशों में और आकाश समस्त नक्षत्रों में विद्यमान है, उसी प्रकार तुलसीदास के मतानुसार समस्त धर्मों में रामनाम व्यापक है।

श्रीराम की अपेक्षा श्रीरामनाम की विशेषता

(३०)

सकल कामनाहीन जे, रामभगति रस लीन।
नाम प्रेम-पीयूष-ह्रद, तिनहुं किये मनमीन॥

शब्दार्थ—कामनाहीन=इच्छाहीन। लीन=लयलीन, तन्मय। पीयूष=सुधा, अमृत। ह्रद=सरोवर। मीन=मछली।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में परम्परित रूपक अलङ्कार है।

नोट—रामनाम की श्रेष्ठता दिखला चुकने के बाद अब गोस्वामी जी राम की अपेक्षा रामनाम की बड़ाई बतलाते हैं और कहते हैं, जो पुरुष समस्त कामनाओं से हीन हैं और राम की भक्ति के रस में मग्न हैं, उनके मन राम-नाम-भक्ति रूपी सुधा-सरोवर में मीन रूप हो जाते हैं।

(३१)

ब्रह्म राम तें नाम बड़, बरदायक बर दानि।
रामचरित सतकोटि महँ, लिय महेस जिय जानि॥

शब्दार्थ—बरदायक=वरदाता, वर देने वाले। बर दानि=श्रेष्ठ दाता।

(३२)

सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन-गाथ॥

शब्दार्थ—सुगति=श्रेष्ठगति अर्थात मोक्ष। अमित=असंख्य। गुनगाथ=गुणों की गाथा।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अतिरेक अलङ्कार है।

(३३)

राम नाम पर राम तें, प्रीति प्रतीति भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल, सगुन-सुमङ्गल-कोस॥

शब्दार्थ—कोस=खजाना।

(३४)

लंक विभीषन राज कपि, पति मारुति खग मीच।
लही राम सों नामरति, चाहत तुलसी नीच॥

शब्दार्थ—कपि=सुग्रीव। पति=मर्यादा, प्रतिष्ठा। मारुति=पवनकुमार, हनुमान। मीच=मृत्यु, मौत। खग=जटायु।

(३५)

हरन अमङ्गल अघ अखिल, करन सकल कल्यान।
रामनाम नित कहत हर, गावत वेद-पुरान॥

शब्दार्थ—अघ=पाप। अखिल=समस्त, सम्पूर्ण।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में शब्द-प्रमाण अलङ्कार है।

(३६)

तुलसी प्रीति प्रतीति सों, रामनाम-जप-जाग ।
किये होय विधि दाहिनो, देत अभागेहि भाग ॥

शब्दार्थ—जाग=यज्ञ । विधि=विधाता । अभागेहि=अभागा पुरुष । रामनाम-जप-जाग=रामनाम का जप रूपी यज्ञ ।

तुलसी का विश्वास

(३७)

जल थल नभ गति अमित अति, अगजग जीव अनेक ।
तुलसी तोसे दीन कँह, रामनाम गति एक ॥

शब्दार्थ—थल=भूमि । नभ=आसमान, आकाश । अगजग=चराचर, स्थावर जङ्गम । तोसे=तुझ जैसे । गति=आश्रय ।

(३८)

राम भरोसो रामबल, रामनाम विस्वास ।
सुमिरत सुभ मङ्गल कुसल, माँगत तुलसीदास ॥

पाठान्तर

सुमिरि नाम मङ्गल कुसल, माँगत तुलसीदास ।

शब्दार्थ—सुभ=शुभ । कुसल=कुशल, कल्याण ।

(३९)

रामनाम रति रामगति, रामनाम विस्वास ।
सुमिरत सुभ मङ्गल कुसल, चहुंदिसि तुलसीदास ॥

पाठान्तर

"सुमिरत सुभ मगल कुसल, चहुँ दिसि तुलसीदास।"

शब्दार्थ—रति=प्रेम। गति=आश्रय।

श्रीराम की आराधना बिना शरीरावयवों का निष्फलत्व

(४०)

रसना साँपिनि वदन बिल, जे न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों, ताहि बिधाता बाम॥

शब्दार्थ—बिल=साँप के रहने की बाँबी। बाम=प्रतिकूल, टेढ़ाई।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपक अलङ्कार है।

(४१)

हिय फाटहु फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्त्रवहिं पुलकहिं नहीं, तुलसी सुमिरत राम॥

शब्दार्थ—जरउ=जल जावे। द्रवहिं=पसीजता है, पिघलता है। स्त्रवहिं=टपकता है, चूता है। पुलकहिं=रोमाञ्चित होता है।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में तिरस्कार अलङ्कार है।

भावार्थ—आशय यह है कि, भगवान् का स्मरण करने पर जिस व्यक्ति के शरीर के अङ्ग अङ्ग में भगवद्भक्ति का प्रादुर्भाव न हो, वह शरीर व्यर्थ है।

(४२)

रामहि सुमिरत रन भिरत, देत परत गुरु पाय।
तुलसी जिनहि न पुलक तनु, ते जग जीवत जाय॥

शब्दार्थ—रन-भिरत=युद्ध में लड़ते हुए। पाय=पाँव, पैर। पुलक=रोमाञ्च। जीवत जाय=जीवन जाय, जिन्दगानी बेकार है। देत=दान देते हुए।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दीपक अलङ्कार है।

(४३)

सोरठा

हृदय सो कुलिस समान, जो न द्रवहि हरिगुन सुनत।
कर न राम गुनगान, जीह सो दादुर-जीह सम॥

शब्दार्थ—कुलिस=वज्र। दादुर जीह=टर्र टर्र करने वाले मेढ़क की जीभ।

अलङ्कार-परिचय—इस सोरठे में धर्मलुप्तोपमा अलङ्कार है।

नोट—दोहा छन्द और सोरठा छन्द में नाम मात्र का अन्तर है। दोहा छन्द को उलट देने से सोरठा छन्द बन जाता है। इसके प्रथम और तृतीय चरणों में ग्यारह ग्यारह और दूसरे तथा चौथे चरणों में तेरह तेरह मात्राएं होती हैं।

(४४)

स्रवै न सलिल सनेहु, तुलसी सुनि रघुवीर जस।
ते नयना जनि देहु, राम करहु बरु आँधरो॥

शब्दार्थ—सलिल सनेहु= भक्ति के आँसू। जस=यश।

अलङ्कार-परिचय—इस छन्द में अनुज्ञा अलङ्कार है। वरु=बल्कि।

(४५)

रहै न जल भरिपूरि, राम सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि, भरि-भरि मूठी मेलिये॥

शब्दार्थ—सुजस=सुयश। रावरो=आपका। मेलिये=डालिये।

अलङ्कार-परिचय—इसमें तिरस्कार अलङ्कार।

स्वामी का आदर्श

(४६)

वारक सुमिरत तोहि, होहिं तिनहिं सन्मुख सुखद।
क्यों न सँभारहिं मोंहि, दयासिन्धु दसरत्थ के॥

पाठान्तर

"दयासिन्धु समरत्थ के।"

शब्दार्थ—वारक=एक मरतवा, एक वार। सुखद=सुखप्रद, सुख देनेवाला। होहिं तिनहि सन्मुख सुखद=उनके सामने समस्त पदार्थ सुखदायी हो जाते हैं।

(४७)

साहिब होत सरोष, सेवक को अपराध सुनि।
अपने देखें दोष, सपनेहु राम न उर धरेउ॥

पाठान्तर

"राम न कबहूँ उर धरे।"

शब्दार्थ—साहिब=स्वामी, मालिक। सरोप=क्रुद्ध। अपने देखे=अपने नेत्रों से देख लेने पर भी।

अलङ्कार-परिचय—इस सोरठे मे व्यतिरेक अलङ्कार है।

(४८)

तुलसी रामहिं आपु तें, सेवक की रुचि मीठि।
सीतापति से साहिबहि, कैसे दीजै पीठि॥

शब्दार्थ—दीजै पीठि=विमुख हो। से=सदृश, समान।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे काकवक्रोक्ति अलङ्कार है।

(४९)

तुलसी जाके होयगी, अन्तर वाहर दीठि।
सो कि कृपालहि देइगो, केवट-पालहि पीठि?

शब्दार्थ—अन्तर=भीतर। दीठि=दृष्टि। केवट-पालहि= निषादराज गुह के पालन करनेवाले।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में भी काकवक्रोक्ति अलङ्कार है।

(५०)

प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम सों, साहव सील-निधान॥

शब्दार्थ—तरुतर=पेड़ के नीचे। डार पर=पेड़ की डालियों पर। सील-निधान=शीलवान।

मन को उपदेश

(५१)

रे मन ! सब सों निरस ह्वै, सरस राम सों होहि ।
भलो सिखावन देत है, निस-दिन तुलसी तोहि ॥

शब्दार्थ—निरस=विरक्त । ह्वै=होकर । सरस=भक्तिमान, अनुरक्त । सिखावन=सीख, शिक्षा, उपदेश ।

(५२)

हरे चरहिँ तापहिँ बरे, फरे पसारहिँ हाथ ।
तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ ॥

शब्दार्थ—हरे चरहिँ=हरा रहने पर चरते अर्थात खाते हैं । तापहिँ बरे=जलने पर दूर ही से तापते हैं । मीत=दोस्त, मित्र । फरे=फलने अर्थात धनवान होने पर ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दीपक अलङ्कार है ।

(५३)

स्वारथ सीताराम सों, परमारथ सियराम ।
तुलसी तेरो दूसरे, द्वार कहा कहु काम ॥

शब्दार्थ—स्वारथ=मतलब, प्रयोजन । परमारथ=मुक्ति, पारलौकिक सुख ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में काकवक्रोक्ति अलङ्कार है ।

(५४)

स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर॥

शब्दार्थ—दीनता=गरीबी। उचित=योग्य।

(५५)

तुलसी स्वारथ राम-हित, परमारथ रघुबीर।
सेवक जाके लषन से, पवनपूत रनधीर॥

शब्दार्थ—पवनपूत=हनुमानजी। रनधीर=रणधीर, युद्ध में दृढ़ रहनेवाले।

स्नेह का आदर्श

(५६)

ज्यों जग बैरी मीन को, आपु सहित बिनु बारि।
त्यों तुलसी रघुबीर बिनु, गति आपनी बिचारि॥

पाठान्तर

ज्यों जग बैरी मीन को, आप सहित परिवार।
त्यों तुलसी रघुनाथ बिन, आपनि दसा निहारि॥

शब्दार्थ—बैरी=शत्रु। आपु सहित=अपने परिवार सहित।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में 'आपु' और 'बारि' में पुनरुक्तिवदाभास अलङ्कार है।

अर्थ—इस दोहे के अर्थ में विद्वानों में मतभेद है।

मन को उपदेश देने के बाद तुलसीदासजी स्नेह के आदर्श का वर्णन करते हुए कहते हैं:—

[१] जैसे पानी में रहनेवाली मछली के लिये, पानी बिना संसार अथवा बिना पानी का संसार वैरी है; हे तुलसी ! वैसे ही श्रीरघुनाथजी के बिना अपनी दशा है।

[२] जिस प्रकार संसार मछली का शत्रु है और उसका परिवार भी एक दूसरे का वैरी (बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है) है, उसी प्रकार श्रीरामजी की भक्ति से हीन मनुष्य की भी दशा है।

(५७)

राम प्रेम-बिनु दूबरो, राम-प्रेम ही पीन।
रघुवर कबहुँक करहुगे, तुलसी ज्यों जलमीन॥

शब्दार्थ—पीन=मोटा। दूबरो=लटा, दुर्बल।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उपमा अलङ्कार है।

(५८)

राम सनेही राम गति, राम चरन रति जाहि।
तुलसी फल जग जनम को, दियो बिधाता ताहि॥

शब्दार्थ—सनेही=स्नेही, अनुरागी। रति=प्रीति। जाहि=जिसे। विधाता=ब्रह्मा।

(५९)

आपु आपने तें अधिक, जेहि प्रिय सीताराम।
तेहि के पग की पानहो, तुलसी तनु को चाम॥

शब्दार्थ—पग को पानहीं=पैर का जूता। चाम=चमड़ा। आपने तें=अपने में।

(६०)

स्वारथ परमारथ रहित, सीताराम सनेह।
तुलसी सो फल चारि को, फल हमार मत एह॥

शब्दार्थ—एह=यह। मत=सिद्धान्त।

(६१)

जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम-सनेह।
तुलसी ते प्रिय राम को, कानन वसहिं कि गेह॥

शब्दार्थ—रूखे विषय रस=इन्द्रियों के विषयों से विरक्त। चिकने-राम-सनेह=श्री रामजी की भक्ति में अनुरक्त। कानन=वन, जंगल।

(६२)

जथा लाभ सन्तोष सुख, रघुवर-चरन सनेह।
तुलसी जो मन खूँद सम, कानन वसहु कि गेह॥

पाठान्तर

"जस कानन तस गेह।"

शब्दार्थ—खूँद=घोड़े की उछल-कूद-युक्त चाल विशेष।

(६३)

तुलसी जौ पै राम सों, नाहिन सहज सनेह।
मूँड मुँड़ायो बादि ही, भाँड़ भयो तजि गेह॥

शब्दार्थ—बादिहि=व्यर्थ ही। नाहिन=नाही।

श्रीराम भरोसा

(६४)

तुलसी श्रीरघुवीर तजि, करै भरोसो और।
सुख सम्पति की का चली, नरकहुँ नाहीं ठौर॥

शब्दार्थ—तजि=छोड़ कर। ठौर=जगह, स्थान।

विशेष—इस पद में कवि ने श्रीरामभक्तों पर, श्रीरामचन्द्रजी में अनन्य भक्ति करने का ज़ोर दिया है और श्रीराम के अनन्य भक्त को देवतान्तर-पूजन का निषेध किया है। श्रीराम के अनन्य भक्त हो, जो और का मुँह ताकते हैं, वे केवल इस संसारिक सुख-सम्पत्ति ही से वञ्चित नहीं रहते, बल्कि मरने पर उन्हें नरक में भी स्थान नहीं मिलता।

(६५)

तुलसी परिहरि हरि हरहिँ, पाँवर पूजहिँ भूत।
अन्त फजीहति होहिँगे, ज्यों गनिका के पूत॥

पाठान्तर

"गनिका के से पूत।"

शब्दार्थ—परिहरि=त्यागकर, छोड़कर। हरि=विष्णु। हरहिँ=विष्णु की संहारकारिणी रुद्रमूर्ति या महादेव, शिव। पाँवर=पामर, नीच, पापी। फजीहत=दुर्दशा। गनिका=वेश्या, रंडी। ज्यों गनिका के पूत=वेश्यापुत्र की तरह अथवा लावारसी माल की तरह।

(६६)

सेये सीताराम नहिं, भजे न शङ्कर गौरि।
जनम गँवायो बादि ही, परत पराई पौरि॥

शब्दार्थ—ग्रादि हौं=व्यर्थ हो। पराई=दूसरे की। पौरि=पौर द्वार।

विशेष—इस दोहे में तुलसीदासजी का अभिप्राय "एको देव केशवो वा शिवो वा" सिद्धान्त से है। जब यह जगत् त्रिगुणात्मक है, तब लोगों की रुचि एक सी नहीं हो सकती। इस लिये सात्विक राजस और तामस तीनों प्रकार की प्रकृति के लोगों के लिये यहाँ पर देवोपासना की ओर सङ्केत किया गया है।

श्रीराम-विमुख जनों की दशा का वर्णन

(६७)

तुलसी हरि अपमान तें, होइ अकाज समाज।
राज करत रज मिल गये, सदल सकुल कुरुराज॥

शब्दार्थ—अपमान ते=निरादर करने से। अकाज=हानि, नुकसान। रज=धूल। सदल=ससैन्य, फौज फाटे सहित। कुरुराज= राजा दुर्योधन।

विशेष—जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण, पाण्डवों की ओर से दूत बन, शान्ति-स्थापन करने के लिये, कौरवों की सभा में गये, उस समय दुर्योधन ने भगवान् श्रीकृष्ण के कथन की अवहेला की थी और उनको बन्दी बना लेने का प्रयत्न किया था। अपने इस घोर अपचार तथा अन्य अन्यायों के लिये दुर्योधन का कुरुक्षेत्र के युद्ध में ससैन्य सर्वनाश हुआ था। इसी घटना का सूत्ररूप से इस दोहे में उल्लेख किया गया है।

(६८)

तुलसी रामहिँ परिहरे, निपट हानि सुनु ओउ।
सुर-सरि-गत सोई सलिल, सुरा सरिस गंगेउ॥

शब्दार्थ—निपट=निरा, बिलकुल। सुर-सरि-गत=गङ्गाजी के बाहिर गया हुआ। सलिल=पानी। सुरा=शराब, मदिरा। सरिस=सदृश, समान। गंगोद=गङ्गाजल।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

अर्थ—तुलसी! यह तुम भली भाँति सुन लो कि, श्रीराम को त्यागने से बड़ी भारी हानि उठानी पड़ती है। देखो, जब जल गङ्गा के भीतर रहता है, तब वह पवित्र गङ्गाजल कहलाता है, किन्तु जब वही जल गङ्गा के बाहिर किसी नावदान में जा गिरता है, तब वह मदिरा के समान त्याज्य माना जाता है।

(६९)

राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह।
भूरि होति रवि दूरि लखि, सिर पर पगतर छाँह॥

शब्दार्थ—माँह=में, अन्दर, भीतर। भूरि=विपुल, बहुत। रवि=सूर्य्य। लखि=देख कर। पगतर=पाँव के नीचे। छाँह=परछाँई।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दृष्टान्त अलङ्कार है।

अर्थ—श्रीरामजी का सम्बन्ध दूर होने पर माया की बढ़ती होती है, किन्तु अपने मन में उनके रहने की बात जान कर, माया घट जाती है। (यह बात दृष्टान्त देकर इस प्रकार समझायी गयी है।) जैसे—सूर्य्य के दूर रहने पर शरीर की छाया लम्बी होती जाती है और

यही सूर्य जब सिर के ठीक ऊपर आकाश में आता है, तब वही छाया पैं के नीचे आजाती है अर्थात् अदृश्य हो जाती है।

(७०)

साहिब सीतानाथ सों, जब घटि है अनुराग
तुलसी तब ही भाल तें, भभरि भागि है भाग॥

शब्दार्थ—साहिब=मालिक। अनुराग=प्रेम। भाल=ललाट, माथा। भभरि=घबड़ा कर। भाग=भाग्य।

(७१)

करि हौ कोसलनाथ तजि, जबहि दूसरी आस।
जहाँ-तहाँ दुख पाइ हौ, तब ही तुलसीदास

शब्दार्थ—कोसलनाथ=श्रीरामचन्द्र। आस=आशा, उम्मेद

(७२)

बिंध न इंधन पाइये, सागर जुरै न नीर
परै उपास कुबेर घर, जो बिपच्छ रघुबीर।

शब्दार्थ—बिंध=विन्ध्याचल। इंधन=जलाने की लकड़ी सागर=समुद्र। जुरै=एकत्र होता है या मिलता है। नीर=पानी उपवास=कड़ाका, फाँका। कुबेर=धनाधिपति देवता का नाम विपच्छ=प्रतिकूल, विपरीत।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अतिशयोक्ति अलङ्कार है

(७३)

बरषा को गोबर भयो, को चह को कर प्रीति।
तुलसी तू अनुभवहि अब, राम-विमुख की रीति॥

पाठान्तर

"को चहै, को करै प्रीति।"

शब्दार्थ—बरषा को गोबर=बरसात का गोबर। अनुभव=तजुर्बा। रीति=हालत, दशा।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दृष्टान्त अलङ्कार है।

विशेष—गोबर भयो अर्थात् बरसाती गोबर को कोई नहीं चाहता, क्योंकि वह किसी काम में नहीं आता। अतः लोग उसे व्यर्थ समझ फेंक देते हैं।

(७४)

सबहि समरथहि सुखद प्रिय, अच्छम प्रिय हितकारि।
कबहुं न काहुहि राम प्रिय, तुलसी कहा बिचारि॥

शब्दार्थ—समरथहि=सामर्थ्यवान् को। अच्छम=अक्षम, अशक्त। काहुहि=किसी को।

श्रीरामजी की अनुकूलता

(७५)

तुलसी उद्यम करम जुग, जब जेहि राम सुडीठि।
होइ सुफल सोइ ताहि सब, सन्मुख प्रभु तन पीठि॥

शब्दार्थ—जुग=जुगति, युक्ति। तुडीठि=अच्छी दृष्टि। सनमुख प्रभु तन पीठि=जिसकी पीठ पर प्रभु हैं; अर्थात् जिसके रक्षक भगवान श्रीरामजी हैं।

(७६)

प्रेम-काम-तरु परिहरत, सेवक कलि-तरु ठूँठ।
स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूँठ॥

शब्दार्थ—प्रेम-काम-तरु=भक्तिरूपी कल्पवृक्ष। कलि-तरु=कलिकाल रूपी वृक्ष। ठूँठ=वह पेड़ जिसके ऊपर की सभी शाखाएँ टूट जाती हैं, केवल तना रह जाता है।

(७७)

निज दूषन गुन राम के, समुझे तुलसीदास।
होय भलो कलिकाल हू, उभय लोक अनयास॥

शब्दार्थ—दूषन=दोष। गुन=गुण। उभय=दोनों। अनयास=अनायास, बिना परिश्रम।

दो मार्ग

(७८)

कै तोहि लागहि राम प्रिय, कै तू प्रभु प्रिय होहि।
दुइ महँ रुचै जो सुगम सो, कीबे तुलसी तोहि॥

शब्दार्थ—कै=या तो। कीबै=करने योग्य।

(७९)

तुलसी दुइ महँ एक ही, खेल छाँड़ि छल खेलु।
कै करु ममता राम सों, कै ममता परहेलु॥

शब्दार्थ—खेल=क्रीड़ा। छल=कपट। परहेलु=निरादर, तिरस्कार।

सच्ची-चाहना

(८०)

निगम अगम साहेब सुगम, राम साँचिली चाह।
अंबु असन अवलोकियत, सुलभ सबै जग माँह॥

शब्दार्थ—निगम=वेदादि शास्त्र। अगम=दुर्बोध्य, दुर्गम। सुगम=सहज में प्राप्त होने योग्य। साँचिली=सच्ची। अम्बु=जल, पानी। असन=भोजन। अवलोकियत देखा जाता है। जग=जगत।

अर्थ—(१) निगमागम शास्त्र गहन होने के कारण दुर्बोध्य हैं। उनके तत्व सहज में समझे नहीं जा सकते। किन्तु (साहेब सुगम) श्रीरामजी सहज में प्राप्त हो जाते हैं। बशर्ते भक्ति सच्ची हो। या जिनके लिये वेद भी नेति नेति कहते हैं, वे भी सच्ची भक्ति द्वारा सुलभ हो जाते हैं। क्योंकि देखा जाता है कि, जिस वस्तु की सच्ची चाहना होती है वह इस संसार में सहज ही में प्राप्त हो जाती है। जैसे पानी और भोज्य पदार्थ संसार में सब को सुलभ हैं।

बटोही की गति का वर्णन

(८१)

सनमुख आवत पथिक ज्यों, दिए दाहिनो बाम।
तैसोइ होत सु आपको, त्यों ही तुलसी राम॥

शब्दार्थ—पथिक=बटोही, राहगीर। सु=सो, वह।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

भावार्थ—जैसे रास्ते में सामने आते हुए बटोही को अपनी दाहिनी या बाईं ओर करना अपने हाथ की बात है; वैसे ही श्रीरामजी को भी दहिने बाएं करना भी अपने ही हाथ की बात है। अर्थात् यदि मनुष्य भगवान् के अनुकूल काम करेगा तो वे उसके अनुकूल होंगे और यदि वह प्रतिकूल काम करेगा तो वे उसके प्रतिकूल होंगे।

विषयों की प्रतिकूलता

(८२)

राम-प्रेम-पथ पेखिये, दिये विषय तनु पीठि
तुलसी केंचुरि परिहरे, होति साँपहूँ डीठि॥

शब्दार्थ—प्रेमपथ=भक्तिमार्ग। पेखिये=देखिये। तनु पीठि=शरीर का पिछला भाग। केंचुरि=केंचुली, साँप के शरीर के ऊपर की झिल्ली जैसी एक वस्तु विशेष। डीठि=दृष्टि, नजर।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दृष्टान्त अलङ्कार है।

(८३)

तुलसी जौ लौं विषय की, मुधा माधुरी मीठि ।
तौलौं सुधा सहस्र सम, राम-भगति सुठि सीठि ॥

शब्दार्थ—जौ लौं=जब तक । मुधा=निकृष्ट । माधुरी=महुए की शराब । तौ लौं=तब तक । सुधा=अमृत । सुठि=सुन्दर । सीठि=सीठी, फीकी ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उपमा अलङ्कार है ।

आत्म-निवेदन

(८४)

जैसो तैसो रावरो, केवल कोसल-पाल ।
तौ तुलसी को है भलो, तिहूँ लोक तिहुँ काल ॥

शब्दार्थ—जैसो तैसो=जिस किसी तरह का । रावरो=आपका । तिहूँ लोक=तीनो लोक, स्वर्ग, मर्त्य, पाताल । तिहुँ-काल=तीनों काल—भूत, भविष्यत्, वर्तमान ।

(८५)

है तुलसी के एक गुन, अवगुन निधि कहैं लोग ।
भलो भरोसो रावरो, राम रीझिवे जोग ॥

शब्दार्थ—अवगुन=दोष । निधि=खजाना, सागर । रीझिवे जोग=प्रसन्न करने योग्य ।

भक्ति की रीति

(८६)

प्रीति राम सों नीतिपथ, चलिय राग रिस जीति।
तुलसी सन्तन के मते, इहै भगति की रीति॥

शब्दार्थ—नीतिपथ=नीति का मार्ग। राग=ईर्ष्या। रिस=क्रोध, कोप। सन्तन के मते=महात्माओं की राय में। इहै=यही। रीति=परिपाटी, पद्धति।

(८७)

सत्य बचन मानस बिमल, कपट रहित करतूति।
तुलसी रघुबर सेवकहिँ, सकै न कलजुग धूति॥

शब्दार्थ—मानस=मन। विमल=निर्मल। करतूति=कर्तव्य, कार्य। धूति=धोखा।

(८८)

तुलसी सुखी जो राम सोँ, दुखी सो निज करतूति।
करम बचन मन ठीक जेहि, तेहि न सकै कलि धूति॥

शब्दार्थ—धूति=धोखा।

(८९)

नातो नाते राम के, रामसनेह सनेहु।
तुलसी माँगत जोरिकर, जनम जनम सिव देहु॥

पाठान्तर

'सिव देहु' को 'विधि देहु'।

शब्दार्थ—नाते=नाता, रिश्ता, सम्बन्ध। रामसनेह सनेहु=(यदि) भक्ति हो तो राम ही में हो। जोरिकर=हाथ जोड़कर। सिव=शिव।

(९०)

सब साधन को एक फल, जेहि जान्यो सोइ जान।
ज्यों त्यों मन-मन्दिर बसहिं, राम धरे धनु-बान॥

शब्दार्थ—धनु-बान=तीर कमान।

निष्काम-भक्ति

(९१)

जो जगदीस तौ अति भलो, जो महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम-चरन अनुराग॥

शब्दार्थ—जो=यदि। जगदीस=जगदीश, श्रीरामचन्द्रजी। महीस=राजा। भाग=भाग जा, दूर चला जा, भाग्य।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में तिरस्कार अलङ्कार है।

अर्थ—इस दोहे के दो अर्थ किये जाते हैं।

(१) यदि श्रीरामजी जगदीश हैं, तो बहुत ही अच्छी बात है और यदि वे (निरे) महीश अर्थात् राजा ही हैं, तो यह भी सौभाग्य ही की बात है। अर्थात् श्रीरामजी चाहे जगदीश हों, चाहे राजा—मेरी कामना

तो यह है कि, जन्म-जन्मान्तर मेरे मन में उनके चरणों की भक्ति (अटल) बनी रहे।

(२) यदि जगत् के स्वामी श्रीरामजी सामने हैं तो बहुत अच्छी बात है और यदि कोई राजा है तो यहाँ से भाग खड़ा हो। क्योंकि तुलसी की चाहना तो जन्म-जन्मान्तर श्रीरामजी के चरणों की भक्ति प्राप्त करना है।

(९२)

परहुँ नरक फल चारि-सिसु, मीच डाँकिनी खाउ।
तुलसी राम सनेह को, जो फल सो जरि जाउ॥

शब्दार्थ—फल चारि-सिसु=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चार बालक हैं। मीचि-डकिनी=मौतरूपिणी डाइन। जरजाउ=जल जावो।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में तिरस्कार अलङ्कार है।

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं न तो हमें नरकगामी होने का विषाद है और न अर्थ, धर्म काम, मोक्ष, चारों फलरूपी बालकों को मृत्यु रूपिणी डाइन के खजाने का ही दुःख है। इतना ही नहीं वरु, श्रीरामजी के प्रति भक्ति करने का जो फल है वह भी जल जाय या नष्ट हो जाय—क्योंकि हम तो भगवान् के निष्काम भक्त हैं।

(९३)

हित सोँ हित रति राम सोँ, रिपु सोँ बैर विहाउ।
उदासीन सब सोँ सरल, तुलसी सहज सुभाउ॥

शब्दार्थ—हित=नातेदार, हितू, कुटुम्बी, मित्र। रति=प्रीति। रिपु=शत्रु। बिहाउ=छोड़ो। उदासीन=तटस्थ। सरल=सादगी। सहज=स्वाभाविक। सुभाउ=स्वभाव।

अर्थ—(१) तुलसीदासजी कहते हैं कि मित्र से मैत्री करना, भगवान् में भक्ति करना और वैरी के प्रति वैर भाव न रखना एवं तटस्थ रहकर, सब लोगों के साथ सरलता पूर्वक वर्तना—भक्तों का यह सहज स्वभाव है।

(२) (हित सों हित) हितू नतेतों से प्रेमभाव तथा मैत्री रखो। वैरियों के साथ वैर रखना त्याग दो और तटस्थ होकर सब के सा। सरल व्यवहार रखो एवं सर्वान्त करण से केवल भगवान् श्रीरामजी में भक्ति करो। तुलसीदासजी कहते हैं, इसीको सहज स्वभाव अर्थात स्वाभाविक प्रेम या भक्ति कहते हैं।

(९४)

तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भये भवपार॥

शब्दार्थ—ममता=ममत्व, मेरेपन का भाव। समता=समानता। राग=अनुराग, ईर्ष्या। रोष=क्रोध। भवपार=संसार-सागर के पार।

(९५)

रामहिँ डरु करु राम सों, ममता प्रीति प्रतीति।
तुलसी निरुपधि राम को, भये हाँरे हू जीति॥

शब्दार्थ—निरुपधि=निरुपाधि, सांसारिक झमेलों से रहित होकर रहना।

(९६)

तुलसी राम कृपालु सों, कहि सुनाउ गुन दोष।
होइ दूबरी दीनता, परम पीन सन्तोष॥

शब्दार्थ—कृपालु=दयालु। दूबरी=दुर्बल। दीनता=दरिद्रता, गरीबी। परम=बहुत, अत्यन्त। पीन=मोटा।

(९७)

सुमिरन सेवा राम सों, साहब सों पहिचानि।
ऐसेहु लाभ न ललक जो, तुलसी नित हित हानि॥

शब्दार्थ—पहिचानि=परिचय। ललक=लालसा, अत्यन्त उत्कण्ठा। नित=सदैव, हमेशा। हित=भलाई।

(९८)

जाने जानत जोइये, बिन जाने को जान?
तुलसी यह सुनि समुझि हिय, आनु धरे धनु-बान॥

शब्दार्थ—जोइये=देखिये। हिय आनु=हृदय में धारण करो। धरे धनुष-बान=धनुर्धारी।

अर्थ—यह नियम है कि जब एक व्यक्ति दूसरे को जानता है; तब वह भी उसको जानने लगता है और जब वह दूसरे को नहीं जानता, तब दूसरा भी उसको नहीं जानता। तुलसीदास ने यही जान बूझकर अपने

हृदय के धनुष-बाण-धारी भगवान् राम को पहले ही धारण कर लिया है, जिससे वे भी तुलसी को पहचान कर उसे ग्रहण करें।

तुलसीदास की शरणागति

(९९)

करमठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञान विहीन।
तुलसी त्रिपथ विहाय गो, राम दुआरे दीन॥

शब्दार्थ—करमठ=कर्मकाण्डी। कठमलिया=काठ की कण्ठी माला पहननेवाले; उपासनावादी। त्रिपथ=ईश्वर प्राप्ति के तीन मार्ग यथा कर्म-काण्ड, उपासना और ज्ञान। गो=गये। राम-दुआरे=राम की शरण में। दीन=नम्र होकर।

(१००)

बाधक सब सब के भये, साधक भये न कोइ।
तुलसी राम कृपालु तें, भलो होइ सो होइ॥

शब्दार्थ—बाधक=कार्य में बाधा डालनेवाले। साधक=कार्य में सहायता देने वाले।

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि संसार में सब लोग कार्य में बाधा डालनेवाले देख पड़ते हैं, कार्य की सिद्धि में सहायता देनेवाले कोई नहीं हैं। ऐसी परिस्थिति में यदि कुछ भलाई बन पड़े तो उसे केवल रामजी की कृपा ही समझनी चाहिये—अन्यथा भलाई की कुछ भी आशा नहीं है।

श्रीराम और शिव की समानता

(१०१)

शङ्कर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलपभरि, घोर नरक महँ वास॥

शब्दार्थ—कल्प=सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग—इन चार युगों की एक चौकड़ी कहलाती है। ऐसी हजार चौकड़ियों का एक कल्प होता है। द्रोही=वैरी, द्रोह करनेवाले।

अलङ्कार-परिचय—इसमें निदर्शन अलङ्कार है।

संसार की विशृङ्खलता

(१०२)

विलग विलग सुख संग दुख, जनम मरन सोइ रीति।
रहियत राखे राम के, गये ते उचित अनीति॥

अर्थ—संसार में जीवों के सुख और दुःख पाने की रीति अलग अलग होने के कारण प्रत्येक जीव के सुखी और दुखी होने का ढंग अलग अलग है। इसी तरह जीवों के मरने और उत्पन्न होने की भी रीति है। अर्थात् समस्त जीव न तो एक साथ जन्मते और न एक साथ मर ही जाते हैं। अतएव इस अनीति से अर्थात् अन्यायपूर्ण विशृङ्खल संसार से चल बसना ही ठीक है और यदि रहना ही पड़े तो रामजी कृपा कर जिसको रक्खें उसीका रहना ठीक है। अथवा यदि संसार में रहना ही पड़े, तो श्रीरामजी को अपने हृदय में रखे रहें।

श्रीराम-भक्ति की सरसता

(१०३)

जाय कहब करतूति बिनु, जाय जोग बिनु छेम।
तुलसी जाय उपाय सब, बिना राम-पद प्रेम॥

शब्दार्थ—जाय व्यर्थ, निष्फल। कहब=कहना सुनना, बकबक करना। करतूति=कर्तव्य। जोग=धनादि सांसारिक पदार्थों का संग्रह, अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति। छेम=कुशलता। प्राप्त वस्तुओं की रक्षा।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

अर्थ—जिस प्रकार करना तो कुछ नहीं और बकबक करना व्यर्थ है और रक्षा का उपाय किये बिना धनादि संग्रह करना व्यर्थ है अथवा योग क्रियाओं में कुशल हुए बिना योग की साधना व्यर्थ है, उसी प्रकार रामजी के चरणों में भक्ति उत्पन्न हुए बिना समस्त उपाय व्यर्थ हैं।

(१०४)

जोग मगन सब जोग ही, जोग जाय बिनु छेम।
त्यों तुलसी के भावगतु, राम-प्रेम बिनु नेम॥

शब्दार्थ—मगन=मग्न, व्यस्त, लीन, आनन्दित। भावगतु=विचार में। नेम=नियमपूर्वक, नित्य का धर्मानुष्ठान।

अलङ्कार-परिचय—इसमें उदाहरण अलङ्कार है।

अर्थ—यद्यपि समस्त लोग सांसारिक पदार्थों का संग्रह करने में मग्न हैं, तथापि उनकी रक्षा का विधान किये बिना, उन सबका संग्रह करना

व्यर्थ हैं। ठीक इसी तरह तुलसीदासजी के मतानुसार आन्तरिक भावनायुक्त रामभक्ति के बिना—व्रत नियमादि यावत् धर्मानुष्ठान सब निष्फल हैं।

श्रीराम यश का प्राबल्य

(१०५)

राम निकाई रावरी, है सब ही को नीक।
जो यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक॥

शब्दार्थ—निकाई=भलाई, अनुकूलता। नीक=अच्छी। तुलसीक=तुलसी को या तुलसी के लिये।

अर्थ—हे राम! आपका आनुकूल्य सब ही के लिये अच्छा है। यदि यह बात सत्य है, तो तुलसीदास के लिये भी वह सदैव अच्छी ही है।

(१०६)

तुलसी राम जो आदर्यो, खोटो खरो खरोइ।
दीपक काजर सिर धर्यो, धर्यो सुधर्यो धरोइ॥

शब्दार्थ—खोटो=खराब, दोषी। खरो=अच्छा, सच्चा। खरोइ=खरा हो जाता है, अच्छा हो जाता है। 'धरो सुधरयो धरोइ' जिसको धारण किया, उसको धारण किये ही रहा, उसे त्यागा नहीं।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दृष्टान्त अलङ्कार है।

(१०७)

तनु विचित्र कायर वचन, अहि अहार मन घोर।
तुलसी हरि भये पच्छधर, तातें कह सब 'मोर'॥

शब्दार्थ—तनु=शरीर। विचित्र=अद्भुत। कायर=डरपोक, भीरु। अहि=सर्प। अहार=भोजन। घोर=कठोर। हरि=श्रीकृष्ण। पच्छधर=पंख धारण करनेवाले या पक्ष ग्रहण करनेवाले (इसमें श्लेष है)। तातें=अतः, इस कारण। मोर=मेरा, मयूर (इसमें निरुक्ति है)।

विशेष—(१) निरुक्ति—एक काव्यालङ्कार है। जिसमें किसी शब्द का मनमाना अर्थ किया जाय, किन्तु वह अर्थ सयुक्तिक हो—ऊटपटांग नहीं।

(२) श्लेष—साहित्य में एक अलङ्कार विशेष। इसमें एक शब्द के दो या अधिक अर्थ किये जाते हैं।

अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि मोर का शरीर रंग बिरंगा होने के कारण विचित्र है, कायरों जैसी बोली है, सर्पों को वह खाता है। अतः उसका मन बड़ा कठोर है, लेकिन मोर के इतने अवगुण होने पर भी भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके पंखों को अपने सीस पर धरा है। अतएव सब कोई उसको मोर मोर (अर्थात् मेरा मेरा) कह कर पुकारते हैं।

तुलसीदास जी की निज दशा का वर्णन

(१०८)

लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै केहि काज?
सो तुलसी महँगो कियो, राम गरीब-निवाज॥

शब्दार्थ—लहै=पाना। केहिकाज=किसलिये। महँगा=गिरा, दुर्लभ।

(१०९)

घर घर माँगे टूक पुनि, भूपनि पूजे पाय।
जे तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय॥

शब्दार्थ—टूक=टुकड़ा, भिक्षा। भूपनि=राजा लोग। पाय=पैर, पाँव। सहाय=सहायक।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में यथासख्या अलङ्कार है।

श्रीरामजी के प्रति कृतज्ञता

(११०)

तुलसी राम सुदीठि तें, निबल होत बलवान।
बालि बैर सुग्रीव के, कहा कियो हनुमान॥

शब्दार्थ—बैर=शत्रुता। कहा कियो=क्या किया?

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है

(१११)

तुलसी रामहुँ तें अधिक, रामभक्त जिय जान
ऋनिया राजा राम भे, धनिक भये हनुमान।

शब्दार्थ—जिय=मन। ऋनिया=ऋणी, कर्जदार। धनिक=पूँजीपति, साहूकार, ऋणदाता। भे=हुए।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

विशेष—सीताजी की खोज खबर लेकर लौटे हुए हनुमान से श्रीरामजी ने कहा था—

"सुन सुत तोहिं उऋण मैं नाहीं।
करि विचारि देखौं मन माँही॥"

सारांश यह है कि दयालु भगवान् अपने भक्तों के सदा ऋणी होकर रहना पसंद करते हैं। इसीसे लोग श्रीरामजी से रामभक्तों को अधिक मानते हैं। रामचरितमानस में कहा भी है—

"राम तें अधिक राम कर दासा।"

(११२)

किया सुसेवक-धरम कपि, प्रभु कृतज्ञ जिय जानि।
जोरि हाथ ठाढ़े भये, बरदायक बरदानि॥

शब्दार्थ—धरम=कर्त्तव्य। बरदानि=श्रेष्ठ दाता।

श्रीरामजी के अवतार लेने का कारण

(११३)

भगत-हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर-अनुरूप॥

शब्दार्थ—भगतहेतु=भक्तों के कल्याण के लिये। तनु-भूप=राजा का शरीर। पावन=पवित्र। प्राकृत नर=साधारणजन। अनुरूप=अनुसार।

(११४)

ज्ञान गिरा गोतीत अज, माया गुन गोपार।
सोइ सच्चिदानन्द-घन, करत चरित्र उदार॥

शब्दार्थ—गिरा=वाणी। गोतीत=इन्द्रियों के परे। अज=अजन्मा। गुन=प्रकृति के सत्व, रज और तम तीन गुण। गोपार=इन्द्रियों से परे। सोई=वही। सच्चिदानन्द-घन=सत्, चित और आनन्द के दाता। उदार=प्रशस्त।

(११५)

हिरन्याछ भ्राता सहित, मधुकैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरे, कृपासिन्धु भगवान।

शब्दार्थ—हिरन्याछ=हिरण्याक्ष एक दैत्य का नाम। अवतरे=अवतार धारण किया। कृपासिन्धु=दयासागर।

कथा-प्रसङ्ग—हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप—दोनों सहोदर भाई थे इनका जन्म दैत्यकुल में हुआ था। ये दोनों बड़े बलवान् और प्रतापी थे। तप प्रभाव से दोनों ही ने असाधारण शक्ति प्राप्त की थी। हिरण्याक्ष ने पृथिवी को जल में डुबो दिया था। तब भगवान् विष्णु ने वराह रूप धारण कर उसका संहार किया और पृथिवी का उद्धार किया। विष्णु द्वारा अपने सहोदर का वध किया जाना सुन, हिरण्यकश्यप विष्णु से द्रोह करने लगा। किन्तु हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लादजी परम विष्णु भक्त थे। रात दिन रामनाम जपा करते थे। इस पर उनको उनके पिता ने बहुत सताया तब भी वे न माने। अन्त में हिरण्यकश्यप ने खम्भे से बाँधकर प्रह्लाद का वध करने को, उस पर तलवार का वार करना चाहा।

इतने में भक्तवत्सल भगवान विष्णु नृसिंह-रूप धारण कर खम्भे से प्रकट हुए और उस दुष्ट दैत्य को मार डाला तथा अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की।

(२) मधु कैटभ की कथा—जिस समय भगवान् विष्णु शेषशय्या पर पड़े क्षीरसागर में शयन कर रहे थे, उस समय उनके नाभि-कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा और उनके कान के मैल से मधु और कैटभ नामक दो राक्षस उत्पन्न हुए। उत्पन्न होते ही उन्होंने ब्रह्माजी पर आक्रमण किया। तब ब्रह्मा ने विष्णु की रक्षा के लिये प्रार्थना की। विष्णु उन दोनों दैत्यों से भिड़ गये। बहुकाल तक युद्ध हुआ। अन्त में विष्णु ने उन दोनों को मार कर ब्रह्मा को बचा लिया। उन दोनों के शरीरों की चर्बी समुद्र के जल में गिरकर ठोस हो गयी। उस ठोस पदार्थ ही का नाम मेदिनी पड़ा।

(११६)

सुद्ध सच्चिदानन्द मय, कन्द भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति-सागर-सेतु॥

शब्दार्थ—सुद्ध=शुद्ध, विकार रहित। सच्चिदानन्दमय=सत् चित और आनन्द दाता। भानु-कुल=सूर्यवंश, जिसमें श्री रामजी ने जन्म लिया था, केतु=ध्वजा, पताका। नर अनुहरत=सामान्य जनों का अनुसरण करते हुए। ससृति-सगर-सेतु=ससाररूपी समुद्र से पार होने के लिये पुल।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे रूपकालङ्कार है।

श्रीरामजी की बाल-लीला

(११७)

बाल बिभूषन बसन बर, धूरि धूसरित अंग।
बाल केलि रघुबर करत, बालबन्धु सब संग॥

शब्दार्थ—विभूषन=विभूषण, गहना, आभूषण। बसन=वस्त्र कपड़ा। धूर-धूसरित=धूल में सना हुआ। बालकेलि=लड़कों के खेल।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

(११८)

अनुदिन अवध बधावने, नित नव मङ्गल मोद।
मुदित मातुपितु लोग लखि, रघुवर बाल बिनोद॥

शब्दार्थ—अनुदिन=प्रतिदिन, हररोज़। बधावने=बधाई। नव=नये नये। मोद=आनन्द। मुदित=हर्षित। बालविनोद=बाललीला।

(११९)

राज अजिर राजत रुचिर, कोसल-पालक-बाल।
जानु-पानि-चर चरित बर, सगुन-सुमङ्गल-माल॥

शब्दार्थ—अजिर=आँगन। राजत=शोभा देते हैं। रुचिर=सुन्दर। कोसल-पालक-बाल=अवधेश के पुत्र। जानु-पानि-चर=घुटनों और हाथों के सहारे चलनेवाले। माल=माला, समूह।

(१२०)

नाम ललित लीला ललित, ललित रूप रघुनाथ।
ललित बसन भूषन ललित, ललित अनुज सिसु साथ॥

शब्दार्थ—ललित=सुन्दर। लीला=खेल, क्रीड़ा। अनुज=छोटे भाई। सिसु=शिशु, बच्चा जो दूध पीता है, अर्थात् बहुत छोटा बच्चा।

(१२१)

राम भरत लछिमन ललित, सत्रुसमन सुभ नाम ।
सुमिरत दसरथ सुवन सब, पूजहिं सब मन काम ॥

शब्दार्थ—सत्रुसमन, शत्रुघ्न। सुवन=पुत्र। पूजहिँ=पूर्ण होते हैं, पूरे होते हैं।

(१२२)

बालक कोसलपाल के, सेवकपाल कृपाल ।
तुलसी-मन-मानस बसत, मङ्गल मञ्जु मराल ॥

शब्दार्थ—सेवकपाल=भक्तों का पालन करनेवाले। मन-मानस=मनरूपी मानसरोवर। मञ्जु=सुन्दर। मराल=हंस।

अलङ्कार-परिचय—इसमें रूपकालङ्कार है।

अवतार लेने के कारण

(१२३)

भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुरहित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहिँ जगजाल

शब्दार्थ—भूमि=पृथिवी। भूसुर=पृथिवी के देवता अर्थात् ब्राह्मण। सुरभि=गौ। जगजाल=संसार रूपी जाल। मनुजतनु=मानव शरीर।

नोट—श्रीरामचरित-मानस में भी इसी आशय की उक्ति है। यथा—

विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु, मायागुन गोपार ॥

(१२४)

निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गो द्विज लागि ।
सगुन-उपासक संग तहँ, रहे मोक्ष सुख[1] त्यागि ॥

पाठान्तर
"१ सब" ।

शब्दार्थ—सगुन-उपासक=साकार भगवान की पूजा करने वाले ।

भगवद्भजन

(१२५)

परमानन्द कृपायतन, मन परिपूरन काम ।
प्रेम भगति अनपायिनी, देहु हमहिं श्रीराम ॥

शब्दार्थ—परमानन्द=अत्यन्त हर्ष । कृपायतन=कृपा के घर या आश्रय-स्थल । अनपायनी=निश्चल, दृढ़, स्थिर ।

(१२६)

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता तें बरु तेल ।
बिनु हरि-भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥

शब्दार्थ—बारि=जल, पानी । बरु=भले ही । सिकता=रेत, बालू । भव=संसार । अपेल=अटल, स्थिर ।

(१२७)

हरिमाया कृत दोषगुन, बिनु हरिभजन न जाहिँ।
भजिय राम सब काम तजि, अस बिचारि मन माहिँ॥

शब्दार्थ—हरिमायाकृत=भगवान् की माया से किये गये या उत्पन्न हुए।

(१२८)

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि, भजहिँ जीव ते धन्य॥

शब्दार्थ—चेतन=सजीव, जीवधारी। जड़=निर्जीव।

(१२९)

श्रीरघुवीर प्रताप तेँ, सिन्धु तरे पाषान।
ते मतिमन्द जे राम तजि, भजहिँ जाय प्रभु आन॥

शब्दार्थ—पाषान=पत्थर। मतिमन्द=मूर्ख। आन=दूसरे।

नोट—इस दोहे में तुलसीदासजी ने श्रीरामजी के अनन्यभक्त बनने पर ज़ोर दिया है और जो श्रीरामजी में अनन्य भक्ति न रख देवतान्तर की उपासनादि करते हैं—उनको मूर्ख बतलाया है।

(१३०)

लव निमेष परमानु जुग, बरष कलप सर चण्ड।
भजहि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु कोदण्ड॥

शब्दार्थ—चण्ड=प्रचण्ड, भयङ्कर। कोदण्ड=धनुष। सर=तीर। काल=समय, मृत्यु।

अलङ्कार-परिचय—इसमें रूपक अलङ्कार है।

नोट—जितने समय में एक बार पलक बंद होता है, उतने समय को 'लव' कहते हैं। साठ लव का एक निमेष। साठ निमेष का एक परिमाण और साठ परिमाण का एक वर्ष होता है। सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग की एक चौकड़ी और ऐसी हजार चौकड़ियों का एक कल्प होता है। एक कल्प ब्रह्मा का एक दिन है।

(१३१)

तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहु मन बिस्राम।
जब लगि भजत न राम कहँ, सोक धाम तजि काम॥

शब्दार्थ—कुसल=कुशल, भलाई, कल्याण। बिस्राम=विश्राम शान्ति। सोकधाम=शोकधाम, शोक का घर। काम=कामना, इच्छा।

'सोकधाम तजि काम'=शोक की आश्रयस्थली कामना या इच्छा को त्याग कर।

(१३२)

बिनु सतसङ्ग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु रामपद, होय न दृढ़ अनुराग॥

शब्दार्थ—सतसङ्ग=साधुसमागम। हरिकथा=भगवान की लीलाओं का वृत्तान्त। मोह=अज्ञान।

(१३३)

बिनु बिस्वास भगति नहिँ, तेहिँ बिनु द्रवहिँ न राम।
रामकृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह बिस्राम ॥

शब्दार्थ—द्रवहिँ=प्रसन्न होते हैं। लह=पाता है।

(१३४)

सोरठा

अस बिचारि मन धीर, तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर, करुनाकर सुन्दर सुखद ॥

शब्दार्थ—कुतर्क=बिना किसी प्रमाण के अपनी बात पर अड़ जाना, वितण्डावाद। संसय=भ्रम। करुनाकर= करुणा करने वाला। सुखद=सुखदायी।

(१३५)

भावबस्य भगवान, सुखनिधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान, भजिय सदा सीता-रमन ॥

शब्दार्थ—भावबस्य=भक्ति द्वारा वश में होने वाले। निधान= खजाना, कोष। भवन=घर।

(१३६)

कहहिँ बिमल मतिसन्त, बेद पुरान बिचारि अस।
द्रवहिँ जानकीकन्त, तब छूटै संसार दुख ॥

शब्दार्थ—विमलमति=निर्मल बुद्धि वाले। सन्त=साधु। जानकीकन्त=श्रीरामजी। वेद=हिन्दुओं के मुख्य धार्मिक ग्रन्थ जिनकी संख्या चार है। उनके नाम ये हैं—१ ऋग्, २ यजु, ३ साम और ४ अथर्व। ये स्वतः प्रमाण हैं। पुराण=वेदव्यास रचित ग्रन्थ विशेष। इनकी संख्या अठारह है।

अलङ्कार-परिचय—इस सोरठा में <u>शब्दप्रमाण</u> अलङ्कार है।

(१३७)

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु ?
गावहिं बेद पुरानु, सुख कि लहिय हरिभगति बिनु ?

शब्दार्थ—विराग=सांसारिक विषयवासना से विरक्ति या अरुचि को विराग या वैराग्य कहते हैं।

अलङ्कार-परिचय—इस सोरठे में <u>कारणमाला</u> अलङ्कार है।

(१३८)

दोहा।

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निरवान।
ज्ञानवन्त अपि सोइ नर, पसु बिनु पूँछ बिखान॥

शब्दार्थ—पद निरवान=निर्वाणपदवी, मुक्ति। बिखान=विषाण, सींग।

(१३९)

सेवा

जरउ सो सम्पति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहज सहाइ॥

शब्दार्थ—सम्पति=सम्पत्ति, धन, दौलत। सदन=घर। सुहृद्=हितैषी मित्र।

अलङ्कार-परिचय—इसमें तिरस्कार अलङ्कार है।

(१४०)

सेइ साधु गुरु समुझि सिखि, रामभगति थिरताइ।
लरिकाईं को पैरिबो, तुलसी बिसरि न जाइ॥

शब्दार्थ—सेइ=सेवा करके। समुझि सिखि=समझ बूझ कर। थिरताइ=स्थिरता। लरिकाईं=लड़कपन। पैरवो=तैरना। बिसरि न जाइ=भूल न जाय।

(१४१)

सबै कहावत राम के, सबहि राम की आस।
राम कहैं जेहि आपनो, तेहिं भजु तुलसीदास॥

शब्दार्थ—कहावत=कहलाते हैं। आस=आशा। आपनो=अपना।

(१४२)

जेहि सरीर रति राम सों, सोइ आदरैं सुजान।
रुद्र-देह तजि नेह बस, बानर भे हनुमान॥

शब्दार्थ—रति=प्रेम, भक्ति। सुजान=चतुर। रुद्रदेह=शिवरूप। नेहवश=स्नेहवश। भे=हुए।

नोट—पुराणान्तर में कथा है कि, हनुमानजी रुद्रावतार हैं। इसी को लेकर तुलसीदासजी ने यह कहा है कि, श्रीरामजी कि भक्ति में डूबकर उन्होंने अपना रुद्र रूप छोड़कर वानर का रूप धारण किया और वे हनुमान रूप से श्रीरामजी के सेवक बने। क्योंकि वानर के शरीर ही में उनको श्रीरामजी की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अतः उन्होंने शिवरूप रुद्र शरीर को त्याग कर, निकृष्ट वानर देह में रहना ही पसन्द किया।

(१४३)

जानि रामसेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरखा तेँ सेवक भए, हर तेँ भे हनुमान॥

शब्दार्थ—जानि=जानकर। सरस=रसयुक्त, श्रेष्ठ। पुरखा=पूर्वपुरुष। यह शब्द ब्रह्माजी के लिये प्रयुक्त किया गया है, क्योंकि वे ही समस्त संसार के बाबा (पितामह) कहलाते हैं।

नोट—कहा जाता है कि, जामवन्त, ब्रह्मा बाबा के अवतार थे। यद्यपि ब्रह्माजी समस्त संसार के पितामह थे, तथापि श्रीरामजी की सेवा के लिये उन्होंने जामवन्त के रूप में भू-मण्डल पर जन्म ग्रहण किया था।

भक्त-संरक्षण

(१४४)

तुलसी रघुबर-सेवकहिँ, खल डाँटत मन माँखि।
बाजराज के बालकहिँ, लवा दिखावत आँखि॥

शब्दार्थ—खल=दुष्ट। डाँटत=धमकाते है। माँखि=अकड़ कर, अभिमान पूर्वक, घमण्ड करके। बाजराज=शिकरो का राजा। पक्षियों में बाज बड़ा शिकारी होता है। लवा=एक छोटा पक्षी विशेष। यह आकाश मे बहुत ऊँचा उड़ता है। बाज पक्षी इसका शिकार करता है।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे दृष्टान्त अलङ्कार है।

(१४५)

रावन-रिपु के दास तें, कायर करहिं कुचालि।
खरदूषन मारीच ज्यों, नीच जाहिंगे कालि॥

शब्दार्थ—रावण-रिपु=श्रीरामचन्द्रजी। कुचालि=बुरा चाल-चलन, खराब चाल। जाहिंगे कालि=काल-कवलित होंगे, शीघ्र नाश को प्राप्त होंगे।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे उदाहरण अलङ्कार है।

कथा-प्रसङ्ग—(१) खर दूषण, मारीचि तीनों राक्षस थे और वनवास-काल मे ये तीनों श्रीरामजी के हाथ से मार डाले गये थे। खर-दूषण सगे भाई थे और जब इनकी बहिन शूर्पणखा के नाक कान लक्ष्मण द्वारा काटे गये, तब खर-दूषण ने चौदह हज़ार वीर राक्षसों की सेना सहित श्रीरामजी पर चढाई की और ये सब युद्ध करते हुए श्रीरामजी द्वारा मार डाले गये। मारीचि—एक राक्षस था जो वर्तमान बम्बई के टापू में रहता था। रावण ने इसकी सहायता से पञ्चवटी में सीता-हरण किया था और मारीचि इसी बीच में श्रीरामजी के द्वारा मारा गया था।

(१४६)

पुन्य पाप जस अजस के भावी भाजन भूरि।
सङ्कट तुलसीदास को, राम करहिंगे दूरि॥

शब्दार्थ—भावी=भविष्य में। भाजन=पात्र। भूरि=विपुल, बहुत।

नोट—कहा जाता है, कतिपय दुष्ट तुलसीदास को सताया करते थे। उन्हींको लक्ष्य कर, यह दोहा कहा गया है।

(१४७)

खेलत बालक ब्याल सँग, मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितुमातु ज्यों, राखत सिय रघुनाथ॥

शब्दार्थ—ब्याल=साँप। मेलत=डालते हैं। पावक=अग्नि। राखत=रक्षा करते हैं।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

(१४८)

तुलसी दिन भल साहु कहँ, भली चोर कहँ राति।
निसिबासर ताकहँ भलो, मानै राम-इताति॥

शब्दार्थ—भल=अच्छा। साहु=साहूकार, महाजन। निसिबासर=रात दिन। इताति=आज्ञा।

(१४९)

तुलसी जाने सुनि समुझि, कृपासिन्धु रघुराज।
महँगे मनि कञ्चन किये, सौंधे जग जल नाज॥

शब्दार्थ—जाने=जान लिया। महँगे=गिराँ, बहुमूल्य। कञ्चन=सुवर्ण। सौंधे=सस्ते। नाज=अन्न, अनाज।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अनुमान अलङ्कार है।

(१५०)

सेवा सील सनेह बस, करि परिहरि प्रिय लोग।
तुलसी ते सब राम सों, सुखद सुजोग वियोग॥

शब्दार्थ—सील=शील, मुरव्वत। परिहर=छोड़ देते हैं। सुयोग वियोग=प्रियजनों का वियोग भी सुयोग होता है।

कृपा-कोर

(१५१)

चारि चहत मानस अगम, चनक चारि को लाहु।
चारि परिहरे चारि को, दानि चारि चख चाहु॥

शब्दार्थ—मानस=मन। अगम=दुष्प्राप्य। चनक= (चणक) शब्द, वाणी। चख=कटाक्ष, कृपाकोर। चाहु=चाहो। चारि प्रकार के प्राणी, यथा अण्डज, स्वेदज, पिण्डज और उद्भिज। चारि को लाहु=चतुर्वर्ग अर्थात, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का लाहु या

लाभ। चारि परिहरे=चतुरजन त्याग दे। चारि को=काम, क्रोध, लोभ और मोह। दानि चार=चार पदार्थों के दानी या चतुर्वर्ग के दानी या दाता।

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि, संसार में चार प्रकार के (अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज) प्राणी होते हैं और ये चारों अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को पाने की इच्छा करते हैं, किन्तु ये चारों पदार्थ, मन एवं वाणी से अलग हैं। अर्थात् यदि कोई वाणी से इनके नाम कहे या उनका मन में मनन करे तो ये प्राप्त नहीं होते। अत: यदि कोई इन चार पदार्थों को प्राप्त करना चाहे तो चतुर जन को उचित है कि, वह काम, क्रोध, लोभ और मोह को त्याग दे और चतुर्वर्गदाता भगवान् श्रीरामजी की कृपाकोर को प्राप्त करने की चाहना करे। ऐसा करने में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये चारों पदार्थ सहज में प्राप्त हो जाते हैं।

भक्तिप्रसूति या भक्ति का उद्भव

(१५२)

सूधे मन सूधे वचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति॥

शब्दार्थ—सूधे=सीधे या शुद्ध, निष्कपट। विधि=क्रिया। प्रसूति=पैदा करनेवाली, जननी, माता।

(१५३)

वेष विसद बोलनि मधुर, मनकटु करम मलीन।
तुलसी राम न पाइए, भए विषय-जल-मीन॥

पाठान्तर

'विष बिद बोलनि मधुर मन, कटु कर हृदय मलीन ।'

शब्दार्थ—विसद=स्वच्छ, सुन्दर। बोलनि=वाणी, बोली।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे रूपकालङ्कार है।

(१५४)

वचन वेष तें जो बनै, सो बिगरै परिनाम।
तुलसी मन तें जो बनै, बनी बनाई राम॥

शब्दार्थ—बिगरै=बिगडता है। परिनाम=परिणाम, नतीजा, अन्त में।

सारांश—छल-प्रपञ्च-पूर्ण, मधुर वाणी को लेकर और सुन्दर वेष भूषा बनाकर तथा आडम्बर रचकर, जो कार्य किया जाता है, उसका अन्तिम परिणाम, भेद खुलने पर अच्छा नहीं होता। किन्तु शुद्ध मन से जो कार्य किया जाता है, अन्त में उसका फल अच्छा होता है और भगवान् भी ऐसे कार्य की सफलता में सहायक होते हैं। अतः निष्कपटता ही भगवद्भक्ति की जननी है।

(१५५)

नीच मीच लैजाय जो, राम-रजायसु पाइ।
तो तुलसी तेरो भलो, न तु अनभलो अघाइ॥

शब्दार्थ—मीचु=मौत। रजायसु=हुक्म, आदेश। नतु=नही तो। अनभलो=बुरा। अघाइ=बहुत।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे अनुज्ञा अलङ्कार है।

श्रीरामजी की भक्तवत्सलता

(१०६)

जातिहीन अघ जनममहि, मुकुत कीनि असि नारि।
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ?॥

शब्दार्थ—जातिहीन=नीच जाति की। अघ जनम-महि=पाप की जन्मभूमि अर्थात् महापापिन। मुकुत=मान, मुक्ति। कीनि=किया। असि=ऐसी। महामन्द=महामूर्ख। बिसारि=भुलाकर।

कथा-प्रसङ्ग—शबरी भिल्लनी जाति की एक स्त्री थी। वह मातङ्ग नामक एक ऋषिप्रवर के आश्रम में रहा करती थी। जब मातङ्ग ऋषि शरीर छोड़ने लगे, तब वे शबरी से कह गये थे कि, तू इसी आश्रम में रहना। क्योंकि कुछ दिनों बाद श्रीरामचन्द्रजी इस आश्रम में आवेंगे और उनके दर्शन कर तुझे परमपद सहज ही में मिल जायगा। तदनुसार वह राम-नाम का जप करती हुई उस आश्रम में रहने लगी। सीताजी को खोजते जब श्रीरामजी मातङ्ग ऋषि के आश्रम में पहुँचे, तब शबरी उनके दर्शन पा आनन्दसागर में निमग्न हो गयी और भगवान् का यथाविधि आतिथ्य करते हुए उसने सुमधुर वन्यफल भगवान् को अर्पण किये। भगवान् ने बड़े चाव से शबरी के आतिथ्य सत्कार को ग्रहण किया और उसे वैकुण्ठधाम पहुँचाया। इसी प्रसङ्ग को लेकर एक भावुक कवि ने एक कवित्त रचा है, जो सुनने योग्य है। वह यह है—

बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु,
'रसिक-बिहारी' देत बन्धु कहँ फेर फेर।

घाखि घाखि भाखैं यह याहू तें अधिक मीठो,
लेहु तो लखन यों बखानत हैं हेर हेर ॥
बेर बेर देवै बेर शबरी सुबर बेर,
तौंहू रघुबीर बेर बेर तेहि टेर टेर ।
बेर जनि लाश्रो बेर बेर जनि लाश्रो,
बेर बेर जनि लाश्रो, बेर लाश्रो कहैं बेर बेर ॥

इस प्रसङ्ग में यह बतला देना भी आवश्यक है कि यह प्रवाद कि भगवान् श्रीरामजी ने शबरी के जूठे बेर खाये, वाल्मीकि रामायण के अनुसार सर्वथा निर्मूल और निराधार है। यह पश्चाद्वर्त्ती भावुक कवियों की कोरी भावमयी कवि कल्पना है।

(१५७)

'बंधु बधू रत' कहि कियो, बचन निरुत्तर बालि ।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की, चितइ न कछू कुचालि ॥

शब्दार्थ—निरुत्तर=जिसका उत्तर न हो। चितई=देखी। कुचालि=खोटी चाल।

कथा प्रसङ्ग—वानरराज बालि ने अपने लहुरे भाई सुग्रीव को राज्य से निकाला था और उसकी पत्नी को अपनी भार्या बना लिया था। जब बालि ने मरते समय बिना बैर निज बध करने के लिये भर्त्सना की, तब बध करने का कारण बतलाते हुए श्रीराम जी ने बालि से कहा था,—

अनुज-बधू, भगिनी, सुत-नारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी ॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई ॥

बालिबध का यह कारण बतला कर, श्रीरामजी ने उसको निरुत्तरित कर दिया था।

किन्तु पीछे जब श्रीरामजी के मित्र सुग्रीव किष्किन्धा के राजसिंहासन पर आसीन हुए, तब उन्होंने अपने बड़े भाई परलोकगत बालि की पत्नी तारा को अपनी भार्या बनाया। धर्मशास्त्रानुसार "ज्येष्ठ भ्राता पितृ समो" अर्थात् बड़ा भाई पिता के समान होता है। अतएव सुग्रीव ने बालि की अपेक्षा कम संगीन अपराध नहीं किया था यह बात राम चरित मानस की इस उक्ति से भी समर्थित होती है,—

"जेहि अघ बधेउ ब्याध इव बाली। पुनि सुकण्ठ सोइ कीन्ह कुचाली॥

अर्थात् जिस पाप के लिये बालि मारा गया था, वही पाप सुग्रीव ने भी किया, किन्तु शरणागतरक्षक भगवान ने सुग्रीव के उस पाप पर दृष्टि न दी। क्योंकि सुग्रीव, श्रीराम जी के शरण में जा चुका था और श्रीरामजी का व्रत शरणागत की रक्षा करना है। शरणागत चाहे कितना भारी पापी क्यों न हो, पर वे शरणागत के दोषों पर दृष्टि नहीं देते, उसे भी अपना लेते हैं। यही भगवान् की विशेषता है।

(१५८)

बालि बली बलसालि दलि, सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी राम कृपालु को, बिरद गरीब-निवाज॥

शब्दार्थ—बलसालि=बलवान, सेनायुक्त। दलि=मार कर। सखा=मित्र, यहाँ सुग्रीव से अभिप्राय है। कपिराज=वानरों के राजा। बिरद=बड़ाई, यश, नेकनामी।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे 'बली' और 'बलशाली' होने के कारण पुनरुक्ति-वदा-भास अलङ्कार है।

(१५९)

कहा बिभीषन लै मिलो, कहा बिगारयो बालि ?
तुलसी प्रभु सरनागतहि, सब दिन आये पालि ॥

शब्दार्थ—कहा=क्या ? लै=लेकर। पालि आये=रक्षा करते चले आये हैं।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

नोट—विभीषण, लङ्कापति रावण का सहोदर छोटा भाई था। विभीषण को अपने बड़े भाई रावण का श्रीरामजी की पत्नी सीता को चुरा लाना अच्छा नहीं लगा। अत अवसर देख विभीषण ने हर पहलू से रावण के इस कृत्य को अच्छा न बतलाया और युद्ध न कर श्रीरामजी से सन्धि कर लेने का अनुरोध किया, किन्तु मूर्खों को उपदेश देना उनके क्रोध को भड़काना है। अत. रावण ने क्रोध में भर विभीषण का तिरस्कार किया और निकाल दिया। तब विभीषण अमन्योपाय हो भगवान् श्रीरामजी के शरण में गया। श्रीरामजी ने विभीषण को तुरन्त अपना लिया और उसी क्षण से उसे लङ्केश बना, लङ्केश कह कर सम्बोधित किया।

(१६०)

तुलसी कोसलपाल सो, को सरनागत-पाल ?
भज्यो बिभीषन बन्धु भय, भंज्यो दारिद काल ॥

शब्दार्थ—सरनागत-पाल=शरणागतपाल=शरण मे आये हुए की रक्षा करनेवाला। भज्यो=भागकर। भञ्ज्यो=नष्ट किया। दारिद=दरिद्रता। काल=मृत्यु। भञ्ज्यो दारिद काल=दरिद्र और मृत्युभय से विभीषण को मुक्त कर दिया।

(१६१)

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस अस राम कर, समुझि परै कहु काहि ?

शब्दार्थ—कुलिसहु= वज्र से भी। चाहि=अपेक्षा। कुसमहु= फूल से भी। खगेस=(खगेश), पक्षिराज अर्थात् गरुड़।

अलङ्कार-परिचय—इसमें काकवक्रोक्ति अलङ्कार है।

(१६२)

वलकल भूषन फल असन, तृनसज्या द्रुम प्रीति।
तेहि समय लङ्का दई, यह रघुवर की रीति॥

शब्दार्थ—वलकल=वृक्ष की छाल। असन=भोजन। तृन-सज्या=तृणशय्या, फूस का बिछौना। द्रुम=वृक्ष।

(१६३)

जो सम्पति सिव रावनहिँ, दीन्हि दिये दस माथ।
सोइ सम्पदा विभीषनहिँ, सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥

शब्दार्थ—सकुचि=संकोच सहित। माथ=माथा, सीस

नोट—रावण शिवजी का अनन्य भक्त था। उसने शिवजी को प्रसन्न करने के लिये अपने दस सिर काट कर होम दिये थे। तब प्रसन्न हो शिव जी ने उसे लङ्का का राज्य दिया था।

(१६४)

अविचल राज विभीषनहि, दीन्ह राम रघुराज।
अजहुँ विराजत लङ्क पर, तुलसी सहित समाज॥

शब्दार्थ—अविचल=अटल, स्थिर, अचल। अजहुँ=आज भी। विराजत=मौजूद हैं।

कथा प्रसङ्ग—संस्कृत ग्रन्थों के मतानुसार सात ऐतिहासिक पुरुष चिरजीवी हैं। यथा—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमाश्च विभीषणः।
कृपश्च परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

अर्थात् १ अश्वत्थामा, २ राजा बलि, ३ व्यास, ४ हनुमान ५ विभीषण, ६ कृपाचार्य और ७ परशुराम, ये सात व्यक्ति चिरजीवी हैं।

(१६५)

कहा विभीषन लै मिल्यो, कहा दियो रघुनाथ।
तुलसी यह जाने बिना, मूढ़ मीजि हैं हाथ॥

शब्दार्थ—हाथ मीजि हैं=अर्थात पछतावेंगे। हिन्दी का यह एक मुहावरा है।

(१६६)

बैरि बन्धु निसिचर अधम, तज्यो न भरे कलङ्क।
झूठे अघ सिय परिहरी, तुलसी साँइ ससङ्क॥

शब्दार्थ—निसिचर=(निशिचर), राक्षस। अधम=नीच। अघ=पाप, दोष। ससङ्क=(सशङ्क), शङ्का से, डर से।

नोट—अयोध्यावासी एक धोबी ने क्रोध में भर अपनी स्त्री को मार पीटा और यह ताना देते हुए उसे घर से निकाल दिया कि, क्या

मैं राम हूँ जो रावण के घर में बहुत दिनों तक रही हुई सीता को फिर अपने घर में रख लूँ। जासूसों द्वारा इस घटना का वृत्तान्त सुन श्रीरामजी बहुत दुःखी हुए और लोकापवाद से डर सीताजी को त्याग दिया। लक्ष्मण श्रीजानकीजी को वन में ले जाकर वाल्मीकि मुनि के आश्रम के निकट छोड़ आये।

(१६७)

तेहि समाज किय कठिनपन, जेहि तौल्यो कैलास।
तुलसी प्रभु महिमा कहौं, की सेवक बिस्वास॥

शब्दार्थ—पन=प्रण, प्रतिज्ञा। तौल्या=तोला था, उठाया था।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में विकल्पालङ्कार है।

कथा-प्रसङ्ग—(१) श्रीरामजी की ओर से दूत बन, बालि-कुमार अङ्गद रावण की सभा में गये और वहाँ अपना पैर रोप यह प्रतिज्ञा की—

जो मम चरन सकहिं सठ टारी।
फिरहिं राम, सीता मैं हारी॥

अर्थात् यदि कोई भी इस दरबार का वीर मेरा पैर टाल देगा, तो मैं सीता को हार जाऊंगा और श्रीरामजी लङ्का से लौट जायँगे। दरबार में इन्द्रजीत आदि बड़े बड़े वीराग्रणी उपस्थित थे और उन सब ने अङ्गद का पैर उठा लेना चाहा था, किन्तु वे सब अपने प्रयत्न में असफल हुए।

(२) रावण एक बार दिग्विजय के लिये निकला था और कैलास पर्वत को दोनों हाथों से उठा कर तौला सा था। उस समय शिवजी ने पैर के अंगूठे से ज्योंही पर्वत को दबाया त्योंही रावण की भुजाएं पहाड़ के नीचे दब गयी थीं।

(१६८)

सभा सभासद् निरखि पट, पकरि उठायो हाथ ।
तुलसी कियो इगारहों, बसन वेष जदुनाथ ॥

शब्दार्थ—सभासद्=दर्बारी । निरखि=देखकर । पट=कपड़ा । इगारहों=ग्यारहवाँ । बसनवेष=वस्त्ररूप । जदुनाथ=श्रीकृष्णचन्द्र ।

कथा-प्रसङ्ग—जब जुआ में हारी हुई पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी को दुःशासन झोंटे पकड़ कर सभा के बीच खींच लाया, और उसकी साड़ी खींच उसे नग्न करना चाहा, तब सभा में उपस्थित भीष्म द्रोण आदि किसी ने भी उसे न रोका । उस समय अपने को निस्सहाय देख द्रौपदी ने द्वारका-वासी श्रीकृष्ण को पुकारा । अन्तर्यामी परमात्मा श्रीकृष्ण ने उसकी आर्त्त पुकार को सुना और उसकी साड़ी इतनी बढ़ी कर दी कि दुःशासन खींचते खींचते थक गया, किन्तु न तो साड़ी का अन्त आया और न द्रौपदी नग्न हो पायी । द्रौपदी की लाज रह गयी ।

(१६९)

त्राहि तीन कह्यो द्रौपदी, तुलसी राजसमाज ।
प्रथम बढ़े पट बिय बिकल, चहत चकित निज काज॥

शब्दार्थ—त्राहि=त्राहि, रक्षा कीजिये । तीन=तीन बार । राजसमाज=राजसभा में । बिय=दूसरी । बिकल=व्याकुल ।

अघटित-घटना

(१७०)

सुख जीवन सब कोउ चहत, सुख जीवन हरि हाथ ।
तुलसी दाता माँगनेउ, देखियत अबुध अनाथ ॥

शब्दार्थ—सुखजीवन=सुखी जीवन। दाता=दानी। माँगनेउ=मँगता भी। अबुध=मूर्ख, गँवार। अनाथ=आश्रय हीन।

(१७१)

कृपिन देइ पाइय परौ, बिन साधे सिधि होइ।
सीतापति सनमुख समुझि, जो कीजै सुभ सोइ॥

शब्दार्थ—कृपिन=कृपण, सूम, कंजूस। पाइय=पाते हैं। परौ=पड़ा हुआ। बिनु साधे=बिना साधन के, बिना उद्योग के। सनमुख=अनुकूल।

नोट—श्रीरामजी को अनुकूल समझ जो काम किया जाता है, वह शुभ ही होता है। कंजूस आदमी भी उनको सर्वस्व देने लगता है और उसको ज़मीन पर पड़ी वस्तु अनायास मिल जाती है और समस्त सिद्धियां भी उसे प्राप्त हो जाती हैं।

(१७२)

दण्डक-बन-पावन-करन, चरन सरोज प्रभाउ।
ऊसर जामहि खल तरहि, होइ रङ्क ते राउ॥

शब्दार्थ—चरनसरोज=चरणकमल। ऊसर=अनुर्वरा, उजाड़। तरहि=तर जाता है। दण्डक बन=गोदावरी नदी तथा पञ्चवटी के आस पास के प्रदेश को दण्डक वन कहते हैं। किसी समय यह प्रदेश दण्डक नाम के एक राजा के अधीन था। एक बार दण्डक ने अपनी गुरुपुत्री पर नियत डिगा दी। तब गुरु ने शाप दिया। शाप से दण्डक का राज्य उजड़ गया और वहाँ वन हो गया।

(१७३)

बिनहीं ऋतु तरुवर फलत, सिला द्रवति जलजोर ।
राम लषन सिय करि कृपा, जब चितवत जेहि ओर ॥

पाठान्तर

बिनही ऋतु तरुवर फरहिँ, सिला द्रवहिँ जलजोर ।
राम लषन सिय करि कृपा, जब चितवहिँ जेहि ओर ॥

शब्दार्थ—ऋतु=मौसम । सिला=पत्थर ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे हेत्वालङ्कार है ।

(१७४)

सिला सु तिय भइ गिरि तरे, मृतक जिये जग जान ।
राम अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान ॥

शब्दार्थ—सिला=(शिला) पत्थर । तिय=स्त्री । गिरि=पर्वत । मृतक=मुर्दा ।

कथा-प्रसङ्ग—"सिला सुतिय भइ" इसमें गौतम-पत्नी अहिल्या की कथा की ओर सङ्केत है, जो इस प्रकार है ।

गौतमपत्नी अहिल्या बड़ी सुन्दरी थी । उसकी सुन्दरता इन्द्र के मन में चुभी और वे निज विषयवासना चरितार्थ करने के लिये उसे हस्तगत करने का अवसर ढूँढने लगे । एक दिन उन्हें अवसर मिल गया और अपना मनोरथ पूर्ण कर वे चल दिये । पर यह कुकृत्य अहिल्या के पति मुनिवर गौतम से छिपा न रह सका । गौतम ने इन्द्र को शाप दिया

और साथ ही अपनी पत्नी अहिल्या को भी। गौतम के शाप से अहिल्या पत्थर हो गयी। बहुत वर्षों तक वह इसी रूप में रही। अन्त में श्रीरामजी के चरण जब उस शिला पर पड़े, तब वह पुनः सुन्दरी नारी हो गयी।

(१७५)

सिला-साप-मोचन-चरन, सुमिरहु तुलसीदास।
तजहु सोच सङ्कट मिटहिँ, पूजहिँ मन की आस॥

शब्दार्थ—सिला-साप-मोचन-चरन=शिला का शाप छुड़ानेवाले चरण। पूजहिँ=पूर्ण होगी।

(१७६)

सुए जिआये भालु कपि, अवध विप्र को पूत।
सुमिरहु तुलसी ताहि तू, जाको मारुति दूत॥

शब्दार्थ—सुए=मरे हुए। विप्र=ब्राह्मण। पूत=पुत्र। मारुति=श्री हनुमानजी। दूत=पायक।

कथा-प्रसङ्ग—(१) लङ्का में युद्ध की समाप्ति होने पर श्रीरामचन्द्रजी के कहने से इन्द्र ने अमृत की वर्षा की थी जिससे मरे हुए रीछ और वानर जी उठे थे।

(२) ब्राह्मण के मृत पुत्र के जी उठने की कथा इस प्रकार है। अयोध्यावासी एक ब्राह्मण के पुत्र की असामयिक मृत्यु हो गयी। ब्राह्मण ने अपने पुत्र की लाश लेजा कर श्रीरामजी की ड्योढ़ी पर रख दिया और कहा मेरे पुत्र की मृत्यु आपके किसी पाप के कारण हुई है।

तब श्रीरामजी ने इस बात का अनुसन्धान किया। उन्होंने देखा शम्बूक नामक एक शूद्र एक निर्जन स्थान में तप कर धर्म की मर्यादा भङ्ग कर रहा है। श्रीरामजी ने तत्क्षण उस अधर्मी का सिर काट डाला और उसे मोक्ष दी। उसके मरते ही ब्राह्मण का मरा हुआ लड़का जी उठा।

तुलसीदासजी का दैन्य

(१७७)

काल करम गुन दोष जग, जीव तिहारे हाथ।
तुलसी रघुबर रावरो, जान जानकीनाथ॥

शब्दार्थ—तिहारे=तुम्हारे। जान=जानिये। जानकीनाथ=श्रीरामचन्द्रजी।

(१७८)

रोग निकर तनु जरठपनु, तुलसी सङ्ग कुलोग।
रामकृपा लै पालिये, दीन पालिबे जोग॥

शब्दार्थ—निकर=समूह, राशि। तनु=शरीर। जरठपन=बुढ़ापा। कुलोग=दुष्टलोग।

(१७९)

मो सम दीन न दीन-हित, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस-मनि, हरहु विषम भव-पीर[1]॥

पाठान्तर

१ 'भव-भीर'

शब्दार्थ—मो सम=मेरे बराबर। दीन-हित=दीनों का हितैषी विषम=कठिन। भवपीर=सांसारिक कष्ट। भव भीर=सांसारिक मामले।

(१८०)

भव-भुवङ्ग तुलसी नकुल, डसत ज्ञान हरि लेत।
चित्रकूट इक औषधी, चितवत होत सचेत॥

शब्दार्थ—भव-भुवङ्ग=संसाररूपी साँप। नकुल=नेवला। ज्ञान=संज्ञा, चेतना। सचेत=चेतनायुक्त, चैतन्य।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपक अलङ्कार है।

(१८१)

हौंहुँ कहावत सब कहत, राम सहत उपहास।
साहब सीतानाथ से, सेवक तुलसीदास॥

शब्दार्थ—हौंहुँ=मैं भी। कहावत कहलाता हूँ। सहत=सहते है। उपहास=हँसी, जीट।

(१८२)

राम-राज राजत सकल, धरम निरत नरनारि।
राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि॥

शब्दार्थ—राजत=शोभायमान। धरम-निरत=धर्म मे संलग्न। दोष=अपराध।

(१८३)

रामराज सन्तोष सुख, घर बन सकल सुपास ।
तरु सुरतरु सुरधेनु महि, अभिमत भोग बिलास ॥

शब्दार्थ—सुपास=सुविधा । महि=पृथ्वी । अभिमत=वाञ्छित ।

अलङ्कार-परिचय—इसमे निदर्शन अलङ्कार है ।

(१८४)

खेती बनि विद्या बनिज, सेवा सिलिपि सुकाज ।
तुलसी सुरतरु सरिस सब, सुफल राम के राज ॥

शब्दार्थ—खेती=कृषिकार्य । बनि=मजदूरी । बनिज=व्यापार, वाणिज्य । सिलिपि=शिल्प, कारीगरी, दस्तकारी । सरिस=समान ।

(१८५)

दण्ड जतिन कर भेद जहँ, नरतक नृत्य समाज ।
जीतेउ मनहिँ सुनिय अस, रामचन्द्र के राज ॥

शब्दार्थ—दण्ड=दण्डी संन्यासियों के हाथ का डंडा विशेष । जतिन कर=सन्यासियो के हाथ मे । भेद=राजनीति चार प्रकार की होती है, साम, दाम, दण्ड, भेद । समाज=समूह । सुनिय अस=ऐसा सुना जाता है ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे परिसख्या अलङ्कार है ।

(१८६)

कोपे सोच न पोच कर, करिय निहोरन काज।
तुलसी परमिति प्रीति की, रीति राम के राज॥

शब्दार्थ—कोपे=क्रोध करने पर। पोच=नीच, छोटे। निहोरन=मिन्नत, विनय। परिमिति=सीमा, पराकाष्ठा।

भौं का वर्णन

(१८७)

मुकुर निरखि मुख राम भ्रू, गनत गुनहिं दै दोष।
तुलसी से सठ सेवकनि, लखि जनि परहि सरोष॥

शब्दार्थ—मुकुर=आइना, दर्पण। निरखि=देखकर। भ्रू=भौं। गुनत=सोचते हैं। सरोष=क्रोधसहित।

अलङ्कार-परिचय—इसमें लेशालङ्कार है।

तुलसी-वल्लभ

(१८८)

सहसनाम मुनि-भनित सुनि, 'तुलसी वल्लभ' नाम।
सकुचत हिय हँसि निरखि सिय, धरम धुरन्धर राम॥

शब्दार्थ—सहसनाम=रामसहस्रनाम नामक एक स्तोत्र। मुनि-भनित=मुनि-कथित। तुलसी वल्लभ=तुलसी का प्यारा या

स्वामी। सकुचत=लजाते हैं। धरम-धुरन्धर=धर्मात्मा। धर्मरूपी धुरी को धारण करनेवाले।

कथा-प्रसङ्ग—एक बड़ा पराक्रमी असुर हो गया है। उसका नाम जलन्धर था। वह देवताओं को सताया करता था। उसकी स्त्री का नाम वृन्दा था। वह बड़ी पतिव्रता थी। उसके पातिव्रत के प्रताप से देवगण उसको मार नहीं पाते थे। अतः समस्त देवगण ने विष्णु से प्रार्थना की। तब विष्णु ने विवश हो जलन्धर का रूप धारण कर वृन्दा का सतीत्व भङ्ग किया और तब जलन्धर मारा गया। वृन्दा को जब यह हाल अवगत हुआ, तब उसने विष्णु को शाप दिया कि, तुम पत्थर हो जाओ। विष्णु ने इस शाप को सहर्ष स्वीकार किया और कहा तुम्हारा शाप मुझे सहर्ष स्वीकार है। किन्तु तुम भी तुलसी वृक्ष का रूप धारण कर, संसार में जन्म लोगी और तुम्हारा वास मेरे सीस पर रहेगा। तुम्हारे बिना मेरा सब भोगराग व्यर्थ होगा। वृन्दा के शापानुसार नारायणी नदी में विष्णु ने शालिग्राम शिला का रूप धारण किया और वृन्दा ने तुलसी वृक्ष का। तभी से भगवान का नाम तुलसी-वल्लभ पड़ा।

जानकीजी की अलौकिक प्रीति

(१८९)

गौतम तिय गति सुरति करि, नहिँ परसति पग पानि
हिय हरषे रघुबंसमनि, प्रीति अलौकिक जानि॥

शब्दार्थ—गौतम-तिय-गति=अहिल्या की दशा। सुरति कर=स्मरण करके। परसति=छूती है। पग=पैर। पानि=हाथ। अलौकिक=अपूर्व, अद्भुत।

श्रीरामजी की सुकीर्ति का वर्णन

(१९०)

तुलसी विलसत नखत निसि, सरद सुधाकर साथ।
मुकुता झालरि झलक जनु, राम सुजस-सिसु हाथ॥

शब्दार्थ—विलसत=शोभायमान होता है। नखत=नक्षत्र। निसि=रात। सरद सुधाकर=शरत्कालीन चन्द्र। मुकुता झालर=मोतियों की झालर। झलक=झलकती है, चमकती है। राम-सुजस-सिसु हाथ=श्रीरामजी के सुयश रूपी बच्चे के हाथ में।

अलङ्कार-परिचय—इसमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(१९१)

रघुपति कीरति-कामिनी, क्यों कहै तुलसीदास।
सरद अकास प्रकास ससि, चारु चिबुक तिल जासु॥

शब्दार्थ—कीरति-कामिनी=कीर्ति रूपी स्त्री। सरद- अकास-प्रकास-ससि=शरदृऋतु के आसमान को प्रकाशित करनेवाला चन्द्रमा। चारु-चिबुक=सुन्दर ठोडी।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में सम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार है।

(१९२)

प्रभु गुनगन भूषन बसन, बिसद बिसेष सुदेस।
राम सुकीरति-कामिनी, तुलसी करतब केस॥

शब्दार्थ—बिसद=दिव्य। बिसेष (विशेष)=अधिक। सुदेस=सुन्दर स्थान। तुलसी-करतब=तुलसी की कविता। केस (केश)=बाल।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

(१९३)

रामचरित राकेस-कर, सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित बिसेष बड़ लाहु॥

शब्दार्थ—राकेसकर=पूर्णमासी के चन्द्र की किरणें। कुमुद=कुमुदिनी। चकोर=तीतर जैसा पहाडी एक पक्षी विशेष।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

(१९४)

रघुबर कीरति सज्जननि, सीतल खलनि सुताति।
ज्यौं चकोर-चय चक्कवनि, तुलसी चाँदनि राति॥

शब्दार्थ—सज्जननि=सत्पुरुषों के लिये। खलनि=दुष्टों के लिये। सुताति=अत्यन्त गर्म, दुःखदायी। चय=समूह, गिरोह, झुंड। चक्कवनि=चकवा पक्षियों के लिये।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

नोट—यह प्रवाद है कि, चन्द्रमा चकोर के लिये सुखदायी और चकवा के लिये दुःखदायी है।

(१९५)

रामकथा मन्दाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु॥

शब्दार्थ—मन्दाकिनी=एक नदी का नाम जिसके तट पर चित्रकूट है। सुभग सनेह=सुन्दर स्नेह।

अलङ्कार-परिचय—इसमें रूपकालङ्कार है।

(१९६)

स्याम-सुरभि-पय बिसद अति, गुनद करहिं तेहि पान।
गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥

शब्दार्थ—स्याम-सुरभि=काली गौ। पय=दूध। गुनद=गुणकारी। गिरा ग्राम्य=गँवारू बोली।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दृष्टान्तालङ्कार है।

(१९७)

हरिहर-जस सुर-नर-गिरहु, बरनहिं सुकबि समाज।
हाँड़ी हाटक घटित चरु, राँधे स्वाद सुनाज॥

शब्दार्थ—हरिहर-जस=विष्णु और महादेव का यश। सुर-नर-गिरहु=देववाणी और मानववाणी, देववाणी संस्कृत और नरवाणी प्राकृतिक भाषा। हाटक घटित=सुवर्ण रचित। चरु=बर्त्तन विशेष। राँधे=पकाने से। सुनाज=अच्छा अन्न।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दृष्टान्त अलङ्कार।

(१९८)

तिल पर राखेउ सकल जग, विदित विलोकत लोग।
तुलसी महिमा राम की, कौन जानिबे जोग॥

शब्दार्थ—तिल=नेत्र की पुतली का मध्यभाग। विदित=प्रकट।

श्रीरामजी का स्वरूप

(१९९)

सोरठा

राम! स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धिपर।
अविगत अकथ अपार, 'नेति नेति' नित निगम कह॥

शब्दार्थ—वचन अगोचर=वाणी से परे। बुद्धिपर=बुद्धि से परे। अविगत=जो जाना न जा सके। नेति=(न+इति) अन्त रहित। निगम=श्रुति, वेद।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में शब्द-प्रमाण अलङ्कार है।

(२००)

माया जीव सुभाव गुन, काल करम महदादि।
ईस-अंक तें बढ़त सब, ईस-अङ्क बिनु बादि॥

शब्दार्थ—माया=गोस्वामीजी ने राम-चरित-मानस में माया की परिभाषा यह दी है—

गो-गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया मानहु भाई॥

जीव=इसकी परिभाषा तुलसीदासजी ने इस प्रकार दी है—

ईश्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥

स्वभाव=प्रकृति। गुन=सत्त्व, रज, तम ये तीन गुण प्रकृति के हैं। महदादि=महत्वादि। आदि शब्द से दस इन्द्रियां, पञ्चतन्मात्रा तथा पञ्चतत्वादि से अभिप्राय है। अङ्क—एक से नौ तक की सख्या को अङ्क कहते हैं।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे रूपकालङ्कार है।

कथा-प्रसङ्ग—तुलसीदास जी कहते हैं माया, जीव, स्वभाव, गुण, काल, कर्म तथा महत्वादि-समस्त पदार्थ ईश्वर रूपी अङ्क को पाकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं। यदि ईश्वर रूपी अङ्क न हो तो ये सब व्यर्थ हैं।

सारांश यह है कि, जैसे अङ्क के बिना शून्य (ज़ीरो) का कुछ भी मूल्य नहीं होता और जिस प्रकार अङ्क के पीछे शून्य (ज़ीरो) बढ़ा देने से उसका मूल्य बढ जाता है; उसी प्रकार ईश्वर रूपी अङ्क से युक्त होने पर शून्य रूपी माया तथा जीवादि भी मूल्यवान अथवा सत्य जान पड़ते हैं।

वियोग का वर्णन

(२०१)

हित उदास रघुवर विरह, विकल सकल नर-नारि।
भरत लषन-सियगति समुझि, प्रभु चख सदा सवारि।

शब्दार्थ—हित=कारण। उदास=अन्य मनस्क। चख=आँखें। सवारि=अश्रुपूर्ण, जल से भरा हुआ।

(२०२)

सीय सुमित्रासुवन गति, भरत-सनेह सुभाउ।
कहिवे को सारद सरस, जनिवे को रघुराउ॥

शब्दार्थ—सुमित्रा-सुवन=सुमित्रानन्दन, लक्ष्मणजी। कहिवे को=कहने को। सारद (शारदा)=देवी सरस्वती। जनिवे को=जानने को।

(२०३)

जानी राम न कहि सके, भरत लषन सिय-प्रीति।
सो सुनि गुनि तुलसी कहत, हठ सठता की रीति॥

शब्दार्थ—जानी=जान गये। सुनि गुनि=सुनकर तथा मन में सोच विचार कर। हठ सठता की रीति=हठी मनुष्यों की दुष्टता की तरह।

(२०४)

सब विधि समरथ सकल कह, सहि साँसति दिनराति
भलो निवाहेउ सुनि समुझि, स्वामिधर्म सब भाँति॥

शब्दार्थ—सकल कह—सब लोग कहते हैं। सहि साँसति=कष्ट सह कर। निवाहेउ=सँभाला।

भरतजी की भक्ति

(२०५)

भरतहि होइ न राजमद, विधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ क काँजी सीकरनि, छीरसिन्धु बिनसाइ॥

शब्दार्थ—राजमद=राज्य पाने का घमण्ड। काँजी=तुर्शी, खटाई। सीकरनि=बूँद। चीरसागर=दूध का समुद्र। बिनसाइ=फटजाय।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में काकवक्रोक्ति अलङ्कार है।

(२०६)

सम्पति चकई भरत चक, मुनि आयसु खिलवार।
तेहि निसि आस्रम-पींजरा, राखे भा भिनुसार॥

शब्दार्थ—चक=चकवा। आयसु=आज्ञा। खिलवार=खिलाडी या बहेलिया। भा=हुआ। भिनुसार=सवेरा।

कथा-प्रसङ्ग—श्री रामचन्द्रजी को मनाकर लौटा लाने के लिये भरतजी अयोध्या से रवाना हुए थे और रास्ते में प्रयाग में पहुँच, भरद्वाज के आश्रम में एक रात के लिये ठहरे थे। भरद्वाज ने निज तपोबल से भरत का ऐसा राजोचित आतिथ्य किया था, जैसा इन्द्रलोक में भी होना दुर्लभ है। किन्तु श्रीरामचन्द्र जी के वियोग-जन्य दुःख से दुःखी भरत जी ने इन सब की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा।

(२०७)

सधन चोर मग मुदित मन, धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहिं, भई भरत की भेंट॥

शब्दार्थ—सधन=धन सहित। धनी=धनवान। गही=पकड़ी।

(२०८)

राम सराहे भरत उठि, मिले राम सम जानि।
तदपि बिभीषन कीस-पति, तुलसी गरत गलानि॥

शब्दार्थ—सराहे=प्रशंसा की। गरत गलानि=लज्जा के मारे गले जाते हैं अर्थात् लज्जा के मारे सिर ऊपर नहीं उठाते।

सारांश—इस दोहे का तात्पर्य यह है कि, भरतजी की भ्राता के प्रति भक्ति देखकर और अपने को भ्रातृद्रोही समझ, विभीषण और सुग्रीव के मन में इस बात की ग्लानि उत्पन्न हुई कि, एक तो भरत हैं, जो भ्रातृ-भक्ति के मूर्तिमान उदाहरण हैं और दूसरे हम हैं कि, जिन्होंने अपने स्वार्थ के वशीभूत हो, बड़े भाइयों को मरवा डाला।

(२०९)

भरत स्याम-तन राम सम, सब गुन रूप निधान।
सेवक-सुख-दायक सुलभ, सुमिरत सब कल्यान॥

शब्दार्थ—स्याम-तन=श्याम-शरीर। निधान=खजाना।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में पूर्णोपमा अलङ्कार है।

श्रीरामजी के परिवार की वन्दना

(२१०)

ललित लषन मूरति मधुर, सुमिरहु सहित सनेह ।
सुख-सम्पति-कीरति-विजय, सगुन सुमङ्गल गेह ॥

शब्दार्थ—ललित=सुन्दर । मधुर मूर्ति=लावण्यमयी मूर्ति । कीरति=यश । गेह=घर ।

(२११)

नाम सत्रु-सूदन सुभग, सुषमा-सील-निकेत ।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमङ्गल देत ॥

शब्दार्थ—सत्रु-सूदन=शत्रुघ्नजी । सुषमासील-निकेत=शोभा और शील के घर ।

(२१२)

कौसल्या कल्यान मयि, मूरति करत प्रनाम ।
सगुन सुमङ्गल काज सुभ, कृपा करहिँ सियराम ॥

शब्दार्थ—करत=करते हैं । काज=काम ।

(२१३)

सुमिरि सुमित्रा नाम जग, जे तिय लेहिँ सुनेम ।
सुवन लषन रिपु-दवन से, पावहिँ पति-पद-प्रेम ॥

पाठान्तर

'सुनेम' को 'सनेम'

शब्दार्थ—जे तिय सुनेम लेहि=जो स्त्रियां पातिव्रत धर्म धारण करती हैं। सुवन=पुत्र। रिपुदवन=शत्रुघ्न।

(२१४)

सीता-चरन प्रनाम करि, सुमिरि सुनाम सनेम।
होहि तीय पतिदेवता, प्राननाथ प्रिय प्रेम॥

पाठान्तर

'सनेम' को 'सुनेम'

शब्दार्थ—तीय=स्त्री। पतिदेवता=पतिव्रता। प्राणनाथ=पति, स्वामी।

(२१५)

तुलसी केवल कामतरु, राम चरित आराम।
कलितरु कपि निसिचर कहत, हमहिं किये बिधि बाम

शब्दार्थ—चरित=चरित्र। आराम=(१) विश्राम, सुख। (२) उपवन, वाटिका। कलितरु=कलियुग रूपी पेड़। निसिचर (निशिचर)=राक्षस। निशिचर इसलिये कहलाते हैं कि, वे रात ही में घूमा करते हैं।

(२१६)

मातु सकल सानुज भरत, गुरु पुरलोग सुभाउ।
देखत देखत कैकइहि, लङ्कापति कपिराउ॥

शब्दार्थ—सानुज=छोटे भाइयों के साथ लङ्कापति विभीषण। कपिराउ=सुग्रीव।

(२१७)

सहज सरल रघुवर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलै जोंक जल वक्रगति, जद्यपि सलिल समान॥

शब्दार्थ—कुमति=बुरी बुद्धिवाली। कुटिल=टेढ़ा। चलइ= चलती है। जोंक=जलकीट विशेष। यह बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। वक्रगति=टेढ़ी चाल। सलिल=पानी। समान=सम-तल, बराबर।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

महाराज दशरथ की दशा का वर्णन

(२१८)

दसरथ नाम सुकाम-तरु, फलइ सकल कल्यान।
धरनि धाम धन धरम सुत, सदगुन रूपनिधान॥

शब्दार्थ—सुकाम तरु=सुन्दर कल्पवृक्ष। फलइ=फलता है। धरनि=भूमि, धरती। धाम=घर, स्थान। रूप-निधान=रूपराशि।

(२१९)

तुलसी जान्यो दसरथहि, 'धरम न सत्य समान'।
रामु तजे जेहि लागि बन, आप परिहरे प्रान॥

शब्दार्थ—जेहि लागि=जिसके लिये। परिहरे=त्यागे।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे कारणमाला अलङ्कार है।

(२२०)

राम-विरह दसरथ-मरन, मुनिमन-अगम सु मीचु।
तुलसी मङ्गल मरन-तरु, सुचि सनेह-जल सींचु॥

शब्दार्थ—मुनि-मन-अगम=जिसे मुनि भी मन में नहीं विचार सकते अथवा जो मुनियों के मन की दौड़ से भी परे हैं। सु=वह। मीचु=मौत। मरन-तरु=मौत रूपी पेड़।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपक अलङ्कार है।

(२२१)

सोरठा

जीवन मरन सुनाम, जैसे दसरथ राय को।
जियत खिलाये राम, राम बिरह तनु परिहरेउ॥

शब्दार्थ—सुनाम=प्रसिद्धि। जियत=जीते जी।

जटायु की मोक्ष

(२२२)

दोहा

प्रभुहि विलोकत गोदगत, सिय-हित घायल नीच।
तुलसी पाई गीधपति, मुकुति मनोहर मीच॥

शब्दार्थ—विलोकत=देखता हुआ। गोदगत=गोद में पड़ा हुआ। गीधपति=गृध्रराज, जटायु। मुकुति=मुक्ति।

कथा-प्रसङ्ग—जटायु का जन्म गीध पक्षी की योनि में होने पर भी उसे ज्ञान भरपूर था। यह महाराज दशरथ का मित्र होने के कारण श्री रामजी का परम हितैषी था। रावण द्वारा सीता का हरा जाना देख, इसने रावण का सामना किया था, किन्तु बलवान रावण इसे बुरी तरह घायल कर और सीता को ले, लंका हुआ था। थोड़ी देर बाद जब सीता को खोजते हुए श्रीरामजी इसके निकट पहुँचे, तब इसकी बुरी दशा देख, श्री रामजी ने इसे अपनी गोद में उठा लिया था और उसकी धूल हाथों से झाड़, बड़े प्रेम की दृष्टि से इसकी ओर निहारा था।

(२२३)

विरत करमरत भगत मुनि, सिद्ध ऊँच अरु नीच।
तुलसी सकल सिहात सुनि, गीधराज की मीच॥

शब्दार्थ—विरत=विरह। करमरत=कर्मयोगी, कर्मकाण्डी भगत=भक्त। सिद्ध=देवयोनि विशेष। सिहात=सराहते हैं या इच्छा करते हैं।

(२२४)

मुए मरत मरिहैं सकल, घरी पहर के बीच।
लही न काहू आज लौं, गीधराज की मीच॥

शब्दार्थ—मुए=भूतकाल में मरे हुए। मरत=वर्तमान काल में कितने ही मरते हैं। लही=लई, पायी। आजु लौं=आज तक।

(२२५)

मुए मुकुत जीवत मुकुत, मुकुत मकुतहूँ बीच ।
तुलसी सबही तें अधिक, गीधराज की मीच ॥

शब्दार्थ—मुए मुकुत=मरने पर भी मुक्त । जीवत मुकुत=जीवित दशा ही में मुक्त हो जाना । मुकुत=सदा मुक्त । बीच=भेद ।

अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि, संसार में मुक्त जीव कई प्रकार के पाये जाते हैं। कोई जीवन्मुक्त होते हैं कोई मरने पर मुक्त होते हैं और कोई सदा मुक्त होते हैं। अतः मुक्ति के कई भेद हैं, किन्तु जटायु की मृत्यु इन सब से बढ़ कर है।

(२२६)

रघुवर बिकल बिहङ्ग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर ।
सिय-सुधि कहि 'सियराम' कहि, देह तजी मतिधीर ॥

शब्दार्थ—बिहँग=पक्षी। पक्षी से यहाँ अभिप्राय जटायु से है। सो=वह। बिलोकि=देखकर। दोउ बीर=दोनो भाई। सुधि=समाचार। मतिधीर=महामना।

(२२७)

दसरथ तें दसगुन भगति, सहित तासु कर काजु ।
सोचत बन्धु समेत प्रभु, कृपासिन्धु रघुराजु ॥

शब्दार्थ—दसगुन=दसगुना। करि-काज=मृतक क्रिया-कर्म करके।

नोट—धर्मशास्त्रानुसार और चलन के अनुसार पशु पक्षियों के श्राद्धादि कर्म नहीं किये जाते, किन्तु श्रीरामचन्द्रजी ने जटायु के श्राद्धादि कर्म करके जटायु के प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता प्रकट की थी।

(२२८)

केवट निसिचर विहग मृग, किये साधु सनमानि।
तुलसी रघुबर की कृपा, सकल सुमङ्गल खानि॥

शब्दार्थ—केवट=मल्लाह, यहाँ केवट से अभिप्राय निषाद से है। निसिचर=राक्षस, किन्तु यहाँ यह शब्द विभीषण के लिये आया है। बिहग=पक्षी अर्थात् जटायु। मृग=मृग रूप धारी मारीचादि नीच कुलोत्पन्न। साधु-सनमानि=सज्जनोचित आदर किया।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे उपमा अलङ्कार है।

हनुमानजी की बड़ाई

(२२९)

मञ्जुल मङ्गल मोदमय, मूरति मारुत पूत।
सकल सिद्धि कर-कमलतल, सुमिरत रघुबर-दूत॥

शब्दार्थ—मञ्जुल मनोहर। मोदमय=आनन्दमय। मारुत-पूत=पवननन्दन, हनुमानजी। कर-कमल-तल=कमल रूपी हाथ की हथेली पर प्राप्त।

(२३०)

धीर वीर रघुवीर-प्रिय, सुमिरि समीर-कुमार।
अगम सुगम सब काज करु, करतल सिद्धि बिचार॥

शब्दार्थ—धीर=धैर्यवान। समीर-कुमार=पवननन्दन, हनुमानजी। अगम=दुष्कर, कठिन। सुगम=सहज।

(२३१)

सुख-मुद-मङ्गल कुमुद-विधु, सुगुन-सरोरुह-भानु।
करहु काज सब सिद्धि सुभ, आनि हिये हनुमान॥

शब्दार्थ—मुद=आनन्द। कुमुद=कुमुदिनी। विधु=चन्द्रमा सुगुन=सद्गुण। सरोरुह=कमल। भानु=सूर्य। हिये जानि=हृदय में ध्यान कर।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में परम्परित-रूपकालङ्कार है।

(२३२)

सकल काज सुभ समउ भल, सगुन सुमंगल जानु।
कीरति विजय विभूति भलि, हिय हनुमानहि आनु॥

शब्दार्थ—कीरति=कीर्ति। विभूति=ऐश्वर्य। समउ=समय।

नोट—अपने मन में हनुमानजी का ध्यान करो और समझ लो कि ऐसा करने से तुम्हारे सब काम शुभ होंगे और समय भी तुम्हारे अनुकूल होगा। इनके अतिरिक्त सद्गुण, सुमङ्गल, सुयश, विजय तथा ऐश्वर्य भी तुम्हें मिलेंगे।

(२३३)

सूर-सिरोमनि साहसी, सुमति समीर-कुमार।
सुमिरत सब सुख सम्पदा, मुदमङ्गल दातार॥

शब्दार्थ—सूर=(शूर) बहादुर। सिरोमनि (शिरोमणि)=सर्वोत्तम। सुमति=अच्छी बुद्धिवाले। दातार=देनेवाले, दाता।

भुजा की पीड़ा

(२३५)

तुलसी तनु-सर सुख-सजल, भुज-रुज-गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिये, कपि केसरी-किसोर॥

शब्दार्थ—तनु-सर=शरीररूपी तालाब। सुख-जलज=सुख-रूपी कमल। भुज-रुज-गज= भुजा का रोग रूपी हाथी। बरजोर=जोरावर। दलत=नष्ट करता है। केसरी-किसोर=(१) सिंह का शावक। (२) केसरी एक वानर का नाम था, उसका पुत्र अर्थात् हनुमान जी।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

नोट—कहते हैं, एक बार गोस्वामि तुलसीदासजी की बाहँ में पीड़ा उत्पन्न हो गयी थी। जैसा कि सच्चे भागवतों का सिद्धान्त है गोस्वामिजी ने इस पीड़ा को दूर करने के लिये अपने सहायक हनुमानजी से प्रार्थना की थी। उसी प्रार्थना के तीन दोहों में से यह एक है। "हनुमान बाहुक" की रचना का कारण भी बाहुपीड़ा ही है।

कथा-प्रसङ्ग—हनुमानजी के पिता का नाम केसरी था। इनका राज्य हिमालय की तलैटी में था। कहते हैं, एक दिन एक बनैला हाथी ऋष्याश्रमों में घुस, बड़ा उपद्रव करने लगा। तब ऋषियों ने उस वन के राजा वानरराज केसरी से रक्षा के लिये कहा। केसरी ने उस हाथी

को मारकर ऋषियों की रक्षा की। इस पर प्रसन्न हो ऋषियों ने वानरराज को वरदान दिया कि, तुम्हारी स्त्री अञ्जना के गर्भ से पवन समान वेगशाली एवं शक्तिमान एक पुत्र उत्पन्न होगा। तदनुसार अञ्जना के गर्भ से हनुमानजी की उत्पत्ति हुई।

(२३५)

भुज-तरु-कोटर रोग-अहि, बरबस कियो प्रवेस।
बिहँगराज-बाहन तुरत, काढ़िय मिटइ कलेस॥

शब्दार्थ—तरु कोटर=पेड़ का खोड़र। अहि=सर्प। बरबस=बरजोरी। बिहँग-राज-बाहन=गरुड़वाहन, विष्णु। काढ़िय=निकालिये। मिटइ=मिट जाये।

अलङ्कार-परिचय—इसमें रूपकालङ्कार है।

नोट—भगवान को गरुड़वाहन कहकर सम्बोधन करने का प्रयोजन यह है कि, गोस्वामिजी ने अपनी बाहुपीड़ा को सर्प की उपमा दी है और गरुड़जी सर्प के शत्रु हैं।

(२३६)

बाहु-बिटप सुख-बिहँग-थलु, लगी कुपीर कुआगि।
राम-कृपा-जल सींचिये, वेगि दीनहित लागि॥

शब्दार्थ—बाहु विटप=भुजा रूपी वृक्ष। सुख-बिहँग-थल=सुख रूपी पक्षी का निवासस्थान। कुपीर=बुरी पीड़ा। कुआगि=भयानक आग। हित लागि=हित के लिये।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

शङ्कर की स्तुति

(२३७)

सोरठा

मुकुति-जनम-महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस सम्भु भवानि, सो कासी सेइय कस न॥

शब्दार्थ—मुकुति जनम-महि=मुक्ति की जन्मभूमि। ज्ञान खानि=ज्ञान की खानि। अघहानिकर=पापनाशक। सेइय कस न=क्यों न सेवन की जाय।

अलङ्कार-परिचय—इसमें काकवक्रोक्ति अलङ्कार है।

(२३८)

जरत सकल सुरबृन्द, बिषम गरल जेहि पान किय
तेहि न भजसि मतिमन्द, को कृपालु शङ्कर सरिस

शब्दार्थ—जरत=जलते हुए। सुरबृन्द=देवतागण। विष गरल=भयङ्कर कालकूट विष। मतिमन्द=मूर्ख, गँवार।

अलङ्कार-परिचय—इसमें काकवक्रोक्ति अलङ्कार है।

कथा-प्रसङ्ग—एक बार अमृत प्राप्ति के लिये देवताओं और दानवों ने समुद्र मन्थन किया। उस समय सर्वप्रथम कालकूट विष निकला। उस विष की लपटों से देवता और दानव भस्म होने लगे। तब उन सब ने शिवजी से प्रार्थना की। इस पर शिवजी, राम का नाम ले उस कालकूट को पान कर गये। उस विष की प्रचण्डता से शिवजी का कण्ठ नीला पड़ गया। तब से शिवजी का दूसरा नाम नीलकण्ठ पड़ा।

दोहा

(२३९)

बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर।
शङ्कर निजपुर राखिये, चितै सुलोचन कोर॥

शब्दार्थ—बासर=दिन। ढासनि के ढका=ठगों के धक्के। रजनी=रात। निजपुर=अपनी पुरी अर्थात् काशी। चितै=देखकर। सुलोचन कोर=कृपाकटाक्ष।

नोट—प्रवाद है कि गोस्वामी तुलसीदासजी की रची रामायण की सर्वप्रियता देख, तत्कालीन काशी के कतिपय ईर्ष्यालु लोग गोस्वामीजी से जलने लगे थे और कई प्रकार से उनको सताते थे। यहाँ तक कि उन लोगों ने कई बार रामायण की पोथी चुरा लेनी चाही थी, पर वे कृतकार्य न हुए। एक दिन रात के समय निधुआ और सिधुआ नामक चोरों ने गोस्वामीजी की कुटी में चोरी करनी चाही, पर जिधर वे जाते उधर ही उन्हें, धनुषबाणधारी दो युवक पहरा देते देख पड़ते थे। अतः वे अपने उद्योग में सफल न हुए। सवेरा होने पर दोनों ने रात की घटना तुलसीदासजी से कही। उस घटना को सुन तुलसीदासजी को इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि उनके पीछे श्रीरामजी और लक्ष्मणजी को रात भर पहरा देना पड़ता है। इस पर उनके पास जो सामान था, वह सब उन्होंने लुटा दिया और रामायण की पोथी अपने परमभक्त टोडरमल के घर भिजवा दी। कहा जाता है वे दोनों चोर रामभक्त हो गये थे। उक्त दोहे में इन्हीं सब घटनाओं की ओर सङ्केत किया गया है।

(२४०)

अपनी बीसी आपुही, पुरिहिं लगाए हाथ।
केहि बिधि बिनती बिस्व की, करौं बिस्व के नाथ॥

शब्दार्थ—बीसी=बीसी साल है, [illegible] ब्रह्मबीसी, विष्णु बीसी और रुद्रबीसी, अर्थात् बीस-बीस वर्ष तक एक एक देव के अधिकार में है। ब्रह्मा बीसी में सृष्टि, विष्णुबीसी में पालन और रुद्र बीसी में संहार कार्य होते हैं। यहाँ रुद्रबीसी से अभिप्राय है। आपुहि=स्वयं। पुरिहि=काशीपुरी में। हाथ लगाये=कार्य आरम्भ किया। केहि बिधि=किस प्रकार। बिस्व की बिनती=लोगों की प्रार्थना। बिस्व के नाथ=शिवजी।

भगवान की शक्ति

(२४१)

और करै अपराध कोउ, और पाव फल-भोग।
अति विचित्र भगवन्त-गति, कोउ न जानिवे जोग॥

शब्दार्थ—पाव=पाता है। गति=चाल, लीला। जोग=योग्य लायक।

प्रपञ्च व्याधि

(२४२)

प्रेम सरीर प्रपञ्च-रुज, उपजी अधिक उपाधि।
तुलसी भली सु-वैदई, बेगि बाँधिये व्याधि॥

शब्दार्थ—प्रेम सरीर=प्रेम रूपी शरीर। प्रपञ्च=सांसारिक पचड़े। रुज=रोग। उपाधि=उपद्रव, विपत्ति। सु-बैदई=अच्छी चिकित्सा। बेगि=शीघ्र। बाँधिये=रोकिये। ब्याधि=रोग।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

झूठा घमंड

(२४३)

हम हमार आचार बड़, भूरि भार धरि सीस।
हठि सठ परबस परत जिमि, कीर कोस-कृमि कीस॥

शब्दार्थ—आचार=आचरण। भूरि=बहुत। भार=बोझ। परबस=पराये के वश में। कीर=सुग्गा। कोस-कृमि=रेशम के कीड़े। कोस=रेशम का कोआ। कीस=वानर।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

नोट—(१) तोता अपनी बोली का घमंड करता है। अतः मनुष्य को देखते ही वह बोलने लगता है और झट फंसा लिया जाता है। (२) रेशम के कीड़े को अपने सौन्दर्य का गर्व होता है। अतः वह अपनी रक्षा के लिये रेशम का कोआ बनाता है और स्वयं ही उसमें फँस जाता है। (३) वानर अपनी चालाकी की ठसक में सब की नकल उतारता है। अतः तमाशा दिखाने को मदारी उसे क़ैद करते हैं और जगह जगह उसे नचाते हैं।

जीव के लिये मार्ग

(२५४)

केहि मग प्रविसति जाति केहि, कहु दर्पन में छाँह।
तुलसी त्यों जग जीव-गति, करी जीव के नाँह॥

शब्दार्थ—केहि मग=किस रास्ते से। प्रविसत=प्रवेश करती है। जाति केहि=किस रास्ते से जाती है। दर्पन=आइना, शीशा। छाँह=परछाँई। नाँह=मालिक अर्थात् जीव का स्वामी ईश्वर।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

स्वप्नवत् मिथ्या संसार

(२५५)

सुखसागर सुख-नींद-बस, सपने सब करतार।
माया मायानाथ की, को जग जाननहार?॥

शब्दार्थ—सुखसागर=आनन्द के समुद्र। सुखनींदबस=सांसारिक सुखों की नींद में पड़कर। करतार=कर्त्ता। मायानाथ=ईश्वर। जाननिहार=जानने वाला।

(२५६)

जीव सीव सम सुख सयन, सपने कछु करतूति।
जागत दीन मलीन सोइ, बिकल विषाद विभूति॥

शब्दार्थ—सीव सम=(शिवसम) ब्रह्मसम। सुख-सयन=सुख की नींद। सपने=स्वप्नावस्था। जागत=जागने पर। विषाद विभूति=दुखपुञ्ज।

(२४७)

सपने होइ भिखारि नृप, रङ्क नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपञ्च जिय जोइ॥

शब्दार्थ—भिखारि=भिक्षुक। रंक=कँगला। नाकपति=इन्द्र। प्रपञ्च=संसार, जगत। जिय=मन। जोइ=देखो।

(२४८)

तुलसी देखत अनुभवत, सुनत न समुझत नीचु।
चपरि चपेटे देत नित, केस गहे कर मीचु॥

शब्दार्थ—चपरि=झपट कर। चपेटा=तमाचा। केस=बाल। गहे=पकड़े हुए। मीचु=मौत।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे दीपकालङ्कार है।

(२४९)

करम-खरी कर मोह-थल, अङ्क चराचर-जाल।
हनत गुनत गुनि गुनि हनत, जगत ज्योतिषी काल॥

शदार्थ—खरी=खड़िया मिट्टी। थल=स्थल, जमीन। अङ्क=गिनती के अङ्क। चराचरा-जाल=स्थावर, जङ्गम जीव समूह। हनत=मिटाता है। गुनत=गिन कर लिखता है। गुनि गुनि=सोच सोच कर। ज्योतिपी-काल=कालरूपी ज्योतिपी।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे रूपकालङ्कार है।

परमार्थ-विचार

(२५०)

कहिवे कहँ रसना रची, सुनिवे कहँ किय कान।
धरिवे कहँ चित हित सहित, परमारथहि सुजान॥

शब्दार्थ—कहिवे कहँ=कहने को। रची=बनाई। सुनिवे कहँ=सुनने को। किय=किये हैं। धरिवे कहँ=धारण करने के लिये।

(२५१)

ज्ञान कहै अज्ञान विनु, तम विनु कहै प्रकास।
निर्गुन कहै जो सगुन विनु, सो गुरु तुलसीदास॥

शब्दार्थ—तम=अन्धकार। निरगुन=निराकार ब्रह्म। सगुन=साकार ब्रह्म।

सारांश—इस दोहे का सारांश यह है कि, जैसे ज्ञान के बिना अज्ञान तथा अन्धकार के बिना प्रकाश को कोई सिद्ध नहीं कर सकता, वैसे ही सगुण ब्रह्म के बिना निर्गुण ब्रह्म की सिद्धि नहीं हो सकती। यदि कोई सगुण के बिना निर्गुण को साबित कर दे, तो गोस्वामीजी उसे अपना गुरु मानने को तैयार हैं।

(२५२)

अङ्क अगुन आखर सगुन, समुझि उभय प्रकार।
खोये राखे आपु भल, तुलसी चारु विचार॥

शब्दार्थ—अगुन=निर्गुण ब्रह्म । आखर=वर्णमाला के अक्षर। खोये=छोड़ने से । राखे=ग्रहण करने से। चारुविचार=सुन्दर विचार।

नोट—तुलसीदासजी कहते हैं कि, मेरे सुन्दर विचार में तो यह आता है कि निर्गुणब्रह्म तो अङ्क और सगुणब्रह्म अक्षर के समान हैं। जिस प्रकार हुंडी या हिसाब की कोई रकम अङ्क और अक्षर दोनों में लिखी जाने पर अच्छी तरह समझ पड़ती है अर्थात् उसके समझने में कोई भ्रम नहीं रह जाता, उसी प्रकार निर्गुण और सगुण ब्रह्म का ज्ञान होने पर ही भ्रम दूर होता है। अत मनुष्य को उचित है कि, वह अपना कल्याण विचार कर, जिसको चाहे त्यागे और जिसको चाहे ग्रहण करे।

(२५३)

परमारथ पहिचानि-मति, लसति विषय लपटानि।
निकसि चिता तें अधजरति, मानहुँ सती परानि॥

शब्दार्थ—परमारथ=परमतत्व अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान। लसति=शोभा पाती है । विषय लपटानि=विषयों मे फँसी हुई । सती=मरे हुए पति के साथ चिता मे जलने वाली पतिव्रता स्त्री। परानि=भगी हुई।

(२५४)

सीस उघारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग।
घर ही सती कहावती, जरती नाह वियोग॥

शब्दार्थ—सीस उघारन=सिर पर का कपड़ा हटा देना। घूँघट खोल देना, लज्जा त्यागना। जब स्त्री सती होने जाती है, तब

वह किसी का पर्दा नहीं करती और मुँह खोलकर चिता में बैठती है। किन=किसने। कहेउ=कहा। बरजत रहे=निषेध कर रहे थे। नाहवियोग=पति के वियोग में।

सारांश—ज्ञान और भक्ति में वही अन्तर है जो चिताग्नि और विरहाग्नि में। ज्ञान धधकते हुए चिताग्नि के और भक्ति शीतल विरहाग्नि के समान है।

निर्मल वैराग्य

(२५५)

खरिया खरी कपूर सब, उचित न पिय ! तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि कै, विमल विवेक विराग॥

शब्दार्थ—खरिया=खुर्जी, झोला विशेष। खरी=चाकमिट्टी, सफेद मिट्टी। पिय=पति। तिय=स्त्री। कै=या तो। मेलि=डाल लो। विमल=स्वच्छ। विवेक=सत्यासत्य विवेचन-शक्ति। विराग=वैराग्य।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में विकल्पालङ्कार है।

नोट—प्रवाद है कि एक बार गोस्वामीजी साधु होने की दशा में घूमते घामते अपनी ससुराल में जा पहुँचे और वहाँ अचानक उनकी भेंट उनकी स्त्री से हो गयी। स्त्री ने उनके साथ जाने का आग्रह किया, किन्तु गोस्वामिजी ने साधु होकर स्त्री का साथ रखना उचित न समझा। इस पर उनकी स्त्री ने उनके सामने उक्त दोहा पढ़ा था। इस दोहे को सुन गोस्वामिजी ने अपनी खुर्जी उठा कर फेंक दी थी।

"प्रेमपुर"

(२५६)

घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच ही, राम प्रेमपुर छाइ॥

शब्दार्थ—घर कीन्हे=गृहस्थ वनने से। घर जात है=परलोक बिगड़ता है। घर छाँडे=घर छोड देने से। घर जाइ=घर चौपट हो-जाता है। घर=गृहस्थी या गृहस्थाश्रम। वन=सन्यासाश्रम। प्रेम-पुर=प्रेम नगर। छाइ=छाकर, बनाकर।

सम्पत्ति की छाँह

(२५७)

दिये पीठि पाछे लगै, सनमुख होत पराय।
तुलसी सम्पति छाँह ज्यौं, लखि दिन बैठि गँवाय॥

शब्दार्थ—पीठि दिये=मुँह फेर लेने पर। पाछे लगे=पीछे लगती है। पराय=भागती है। बैठि दिन गँवाय=निश्चल बैठकर समय बिताओ।

अलङ्कार-परिचय—इसमे उपमा अलङ्कार है।

"आसादेवी"

(२५८)

तुलसी अद्भुत देवता, आसादेवी नाम।
सेये सोक समर्पई, बिमुख भये अभिराम॥

शब्दार्थ—सेये=सेवा करने से। समर्पई=देती है। अभिराम=सुन्दर आनन्द।

मोह महिमा

(२५९)

सोई सेँवर तेइ सुवा, सेवत सदा बसन्त।
तुलसी महिमा मोह की, सुनत सराहत सन्त॥

शब्दार्थ—सोई=वही। सेंवर=सेमर का पेड। तेइ=वही। सुवा=सुग्गा, तोता। महिमा=बडप्पन। सराहत=प्रशंसा करते हैं।

नोट—सेमर का फल देखने में बड़ा अच्छा जान पड़ता है, किन्तु उसमें न तो रस ही होता और न गूदा ही। उसके भीतर तो रुई होती है। किन्तु आशावादी तोता उसकी सुन्दरता देख उस पर लट्टू हो जाता है और बसन्त भर उसका रस या गूदा पाने की आशा से उस पर बैठा रहता है। पर जब उसमें से रुई निकलती है, तब वह निराश हो वहाँ से उड़ जाता है। प्रति वर्ष उसे इसका अनुभव होने पर भी, मोहवश वह बसन्त आने पर उस पर बैठता अवश्य है।

मति की रङ्कता

(२६०)

करत न समुझत झूठ-गुन, सुनत होत मति रङ्क।
पारद प्रगट प्रपञ्चमय, सिद्धिउ नाउँ कलङ्क॥

शब्दार्थ—झूठगुन=संसार के मिथ्या गुण। मतिरङ्क होति=बुद्धि कङ्गाल हो जाती है। अर्थात् बुद्धि हीन हो जाती है।

प्रपञ्चमय=पञ्चतत्व युक्त। सिद्धिउँ=सिद्धिनाम होने पर भी। कजङ्क=कजरी जो पारा सिद्ध होने पर जम जाती है।

अलङ्कार-परिचय—इसमे उपमा अलङ्कार।

लोभ विडम्बना

(२६१)

ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ विडम्बना, कीन्हि न यहि संसार?

शब्दार्थ—तापस=तपस्वी। सूर=वीर। कोविद=पण्डित। गुन-आगार=गुणों के घर। केहिकै=किसको। विडम्बना=अपयश।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे काकुवक्रोक्ति अलङ्कार है।

श्रीमद्

(२६२)

श्रीमद् वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि?
मृगनयनी के नयन सर, को अस लागि न जाहि?

शब्दार्थ—श्रीमद्=ऐश्वर्य का दर्प। वक्र=टेढ़। केहि=किसे। प्रभुता=स्वामित्व। मृगनयनी=मृगनयन के समान नेत्रोवाली सुन्दरी स्त्री। नयन-सर=कटाक्षवाण। अस=ऐसा।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे काकुवक्रोक्ति अलङ्कार है।

माया कटक

(२६३)

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया-कटक प्रचण्ड ।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाषण्ड ॥

शब्दार्थ—कटक=सेना । प्रचण्ड=भयानक । भट=योद्धा । दम्भ=आडम्बर । कपट=छल । पाखण्ड=ढोंग ।

(२६४)

तात तीन अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विज्ञानधाम मन, करहिँ निमिष महँ छोभ ॥

शब्दार्थ—तात=भाई । खल=दुष्ट । विज्ञान-धाम=ज्ञानी । निमिष=क्षणभर में । छोभ= क्षुब्ध, विचलित ।

(२६५)

लोभ के इच्छा दम्भबल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष वचन बल, मुनिवर करहिँ विचारि ॥

शब्दार्थ—परुष=कठोर । मुनिवर=श्रेष्ठ मुनि ।

नारीनिन्दा

(२६६)

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह के धारि ।
तिन्हमहँ अति दारुन दुखद, मायारूपी नारि ॥

शब्दार्थ—धारि= हथियार। दारुन=कठोर। नारि=स्त्री।

(२६७)

काह न पावक जरि सकै, काह न सिन्धु समाय।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय॥

शब्दार्थ—पावक=आग। समाइ=समाता है। अबला=स्त्री।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे काकवक्रोक्ति अलङ्कार है।

(२६८)

जनम-पत्रिका बरति कै, देखहु मनहिँ बिचारि।
दारुन बैरी मीचु के, बीच बिराजति नारि॥

शब्दार्थ—बरति कै=व्यवहार करके। बैरी=शत्रु। मीचु=मृत्यु।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में प्रमाणालङ्कार है।

नोट—जन्मकुण्डली देख, अपने मन में भली भाँति विचार कर देखो, स्त्री का स्थान सदा बैरी और मृत्यु के बीच ही में है।

सारांश यह है कि, जन्मकुण्डली में जन्मस्थान से छठवाँ स्थान शत्रु का, सातवाँ स्थान स्त्री का और आठवाँ मृत्यु का है। अतएव स्त्री के स्थान के एक ओर शत्रुस्थान और दूसरी ओर मृत्युस्थान होने मे स्त्री का स्थान शत्रु और मृत्यु के बीच में है।

(२६९)

दीपसिखा सम जुवतितन, मन जनि होसि पतङ्ग।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सतसङ्ग॥

शब्दार्थ—दीपसिखा=(दीपशिखा) दीपक की लौ। जुवतितन=स्त्री का शरीर। जनि=मत। पतङ्ग=पतिङ्गा।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में लुप्तोपमा अलङ्कार है।

गृहस्थ की निन्दा

(२५०)

काम-क्रोध-मद-लोभरत, गृहासक्त दुखरूप
ते किमि जानहिँ रघुपतिहिँ, मूढ़ परे भवकूप ॥

शब्दार्थ—रत=लिप्त। गृहासक्त=गृहस्थी में फँसे हुए। भवकूप=संसाररूपी कुआँ।

असाध्य रोगी

(२५१)

ग्रहग्रहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाई बारुनी, कहहु कौन उपचार ? ॥

शब्दार्थ—ग्रह ग्रहीत=बुरी ग्रह दशा में पड़ा हुआ। बात=बाई, वायुरोग। बारुनी=शराब। उपचार=उपाय, चिकित्सा।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में समुच्चयालङ्कार है।

मन की शान्ति

(२५२)

ताहि कि सम्पति सगुन सुभ, सपनेहु मन बिस्राम।
भूत-द्रोह-रत मोहबस, रामबिमुख रतकाम ॥

शब्दार्थ—विश्राम=शान्ति। भूत-द्रोह-रत=प्राणियों के साथ द्रोह करनेवाला। मोहवस=मोह के वश होकर। रतकाम=काम मे लिप्त, कामासक्त, लम्पट।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे काकवक्रोक्ति अलङ्कार है।

ज्ञान की दुर्गमता

(२७३)

कहत कठिन, समुझत कठिन, साधत कठिन विवेक।
होइ घुनाक्षर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक॥

शब्दार्थ—विवेक=ज्ञान। पुनि=फिर। प्रत्यूह=विघ्न।

नोट—घुणाक्षर न्याय—घुन (कीट विशेष) जब किसी लकडी को खाने लगता है, तब उस लकड़ी पर कतिपय टेढ़ी मेढी रेखाएँ सी बन जाती हैं। कभी कभी ये रेखाएँ अक्षराकार सी जान पड़ती हैं। इन्हीं अक्षरों को घुणाक्षर कहते हैं। जैसे ये अक्षर संयोगवश बनते हैं, वैसे ही जब संयोगवश कोई काम सिद्ध हो जाता है, तब उसे घुणाक्षर न्याय कहते हैं।

व्यर्थ चेष्टा

(२७४)

खल प्रबोध जग सोध मन, को निरोध कुल सोध।
करहिं ते फोकट पचि मरहिं, सपनेहुँ सुख न सुबोध॥

शब्दार्थ—प्रबोध=ज्ञान। जगसोध=संसार को शुद्ध कर एक मार्ग पर ले जाना। निरोध=रोकना। कुल-सोध=एक कुल को

निष्कलङ्क बनाये रखना। फोकट=व्यर्थ। पचि मरहिँ=दुःख सहते हैं। सुबोध=ज्ञान।

नोट—इसमें सन्देह नहीं कि (१) दुष्टों को ज्ञानोपदेश, (२) संसार भर के सुधार का भार अपने ऊपर लेना, (३) अपने मन को वश में करना और (४) कुल को निष्कलङ्क बनाये रखना—एक प्रकार से दुस्साध्य काम हैं।

शान्ति प्राप्ति का उपाय

(२७५)

सोरठा

कोउ बिस्राम कि पाव, तात सहज सन्तोष बिनु ?
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय॥

शब्दार्थ—बिश्राम=शान्ति। पाव=पाता है। सहज=स्वाभाविक। जतन=यत्न। पचि पचि मरिय=जीतोड़ परिश्रम करना।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे दृष्टान्तालङ्कार है।

मायापति

(२७६)

सुर नर मुनि कोउ नाहिँ, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माँहि, भजिय महा मायापतिहिँ॥

शब्दार्थ—महा-माया-पतिहिँ=भगवान श्रीरामचन्द्रजी का।

नोट—विषय-वासनाओं का सुख क्षणस्थायी है। अत विषयवासना के सुखों की आशा त्याग कर, मनुष्य को सच्चा सुख प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिये। सच्चा सुख यद्यपि ज्ञान प्राप्ति से होता है, तथापि ज्ञान को प्राप्त करना इसलिये बड़ी कठिन बात है कि, काम क्रोधादि माया की सेना ज्ञान के पीछे लगी रहती है। अतः ज्ञानी के ज्ञानमार्ग से च्युत हो जाने की सदा सम्भावना बनी रहती है। अत. गोस्वामीजी कहते हैं कि, सच्चा सुख पाने का निष्कण्टक और सरल मार्ग भगवान की भक्ति है। जो लोग भगवान के शरण में जाते हैं, उनके लिये मायाजनित विघ्न-बाधाओं का भय नहीं रह जाता। क्योंकि भगवान मायापति होने से माया उनकी वशवर्तिनी बनी रहती है। स्त्री सदा पति के वश में रहती ही है। अतः अपने पति के भक्तों पर माया भी अनुग्रह किया करती है।

चातक सूक्ति

(२७७)

दोहा

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।
एक राम-घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥

शब्दार्थ—एक=केवल। आस=आशा। राम-घनस्याम=राम-रूपी श्याम मेघ या मेघवर्ण श्रीराम। हित=हित करनेवाला।

नोट—चातक पपीहा पक्षी का नाम है। यह श्याम मेघ का बड़ा प्रेमी है। यह स्वाती नक्षत्र के जल को छोड़, अन्य किसी प्रकार का जल नहीं पीता। मारे प्यास के इसको जान भले ही निकल जाय, किन्तु यह पियेगा, तो स्वाती नक्षत्र ही का जल।

(२७८)

जौ घन बरसे समय सिर, जौ भरि जनम उदास।
तुलसी याचक चातकहि, तऊ तिहारी आस॥

शब्दार्थ—जौ=चाहे। समय-सिर=ठीक समय पर (यह एक मुहावरा है।) जौ भरि जनम उदास=चाहे जन्म भर उदास रहे, यानी पानी न बरसे। याचक=मँगता। तऊ=तो भी। आस=आसा।

अलङ्कार-परिचय—इसमें रूपकालङ्कार है।

(२७९)

चातक तुलसी के मते, स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम-तृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी, आनि॥

शब्दार्थ—तुलसी के मते=तुलसी की सम्मति में। प्रेम-तृष्णा=प्रेम की प्यास। आनि=मर्यादा।

(२८०)

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखिगे अङ्ग।
तुलसी चातक प्रेम को, नित नूतन रुचि रङ्ग॥

शब्दार्थ—रटत रटत=चिल्लाते चिल्लाते। रसना=जीभ। लटी=दुबली पड़ गयी या थक गयी। तृषा=प्यास। गे=गये।

(२८१)

चढ़त न चातक चित कबहुँ, प्रिय पयोद के दोख।
तुलसी प्रेम-पयोधि की, ताते नाप न जोख॥

शब्दार्थ—पयोद=मेघ, बादल। दोख (दोष)=अवगुण, अप-राध। पयोधि=समुद्र। नाप न जोख=हिसाव, थाह।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे रूपकालङ्कार है।

(२८२)

बरसि परुष पाहनपयद, पङ्ख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिये, चतुर चातकहि चूक॥

शब्दार्थ—परुष=कठोर। पाहन=पत्थर। पयद=मेघ। चूक=भूल।

(२८३)

उपल बरसि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर॥

शब्दार्थ—उपल=पत्थर, ओले। तरजि=तर्जकर। कुलिस=बिजली, वज्र। चितव=देखता है।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे द्वितीय सम्मुचयालङ्कार है।

(२८४)

पवि पाहन दामिनि गरज, झरि झकोर खरि खीझि।
रोष न प्रीतम-दोष लखि, तुलसी रागहिं रीझि ॥

शब्दार्थ—पवि=वज्र। दामिनि=बिजली। झरि=पानी की झड़ी। झकोर=वायु के झकोरे। खरि खीझि=पूर्ण अप्रसन्नता। रोष=क्रोध। प्रीतम=प्यारे। लखि=देखकर। रागहिं रीझि=प्रेम में भी प्रसन्नता होती है।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे समुच्चयालङ्कार है।

(२८५)

मान राखिबो माँगिबो, पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौ चातक मत लेहु ॥

शब्दार्थ—मान राखिबो=आत्मसम्मान बनाये रखना। माँगिबो=याचना। फबै=शोभित हो।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे सम्मुच्चयालङ्कार है।

(२८६)

तुलसी चातक ही फबै, मान राखिबो प्रेम।
बक्र बुन्द लखि स्वातिहू, निदरि निबाहत नेम ॥

शब्दार्थ—बक्र=टेढ़ी। लखि=देखकर। निदरि=निरादर करके। नेम=नियम।

नोट—चातक स्वाती का जल पीने के लिये अपना मुँह सदैव आकाश की ओर किये रहता है। स्वाती के जल की बूँद जब उसके मुख में गिरती है, जब तो वह पान करता है और यदि उसके मुख में न गिर कर वह कहीं बाहर गिरे, तो वह उसको नहीं पीता। इस नियम को चातक कभी नहीं तोड़ता है। यहाँ तक कि, यदि स्वाती की बूँद टेढ़ी होकर उसके मुँह के बाहिर गिरती है, तो वह उसके पीने के लिये प्रयत्न नहीं करता, बल्कि अपने नियम का पालन करता हुआ, आत्म-सम्मान की रक्षा करता है।

(२८७)

तुलसी चातक माँगनौ, एक एक घन दानि।
देत जो भू-भाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि॥

शब्दार्थ—एक=प्रधान, अद्वितीय। घन=मेघ। भूभाजन=पृथिवी रूपी वर्त्तन। भरत=भर देता है। घूँटक=एक घूँट।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में भङ्गक्रमालङ्कार है।

(२८८)

तीन लोक तिहुँ काल जस, चातक ही के माथ।
तुलसी जासु न दीनता, सुनी दूसरे नाथ॥

शब्दार्थ—चातक ही के माथ=चातक ही के भाग्य में। दीनता=गरीबी।

(२८९)

प्रीति पपीहा पयद की, प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि॥

शब्दार्थ—पयद=मेघ। कनाउड़ो=कृतज्ञ। कनाउड़ो कियो कृतज्ञ बनाया।

(२९०)

नहिं जाचत नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि, को बारिद बिनु देइ॥

शब्दार्थ—संग्रही=जमा करनेवाला। मानी=अभिमानी। बारिद=बादल।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में काकुवक्रोक्ति अलङ्कार है।

(२९१)

को को न ज्यायो जगत में, जीवन-दायक दानि।
भयो कनौड़ो जाचकहि, पयद प्रेम पहिचानि॥

शब्दार्थ—को को न ज्यायो= किस किस को नहीं जिलाया। जीवन-दायक=जीवन का दान करनेवाला।

(२९२)

सघन साँवरि घन बहत, सबहिं सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक-जलद की, रीझि बूझि बुध काहु॥

शब्दार्थ—साधन=किसी काम के करने मे। साँसति=कष्ट। फल-लाहु=फल की प्राप्ति। बूझि=समझ कर। बुध=बुद्धिमान जन। काहु=कोई।

(२९३)

चातक-जीवन-दायकहि, जीवन समय सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै, चातक प्रीति प्रतीति॥

शब्दार्थ—जीवन=जीवन, जल। जीवन दायकहिं=(१) जल देनेवाला, बादल, (२) जीवन-दाता। (इसमें श्लेष है); जीवन-समय=पावस ऋतु, बरसकाला। सुरीति=अच्छा रिवाज।

(२९४)

जीव चराचर जहँ लगे, है सब को हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो, घन सोँ सहज सनेह॥

शब्दार्थ—चराचर जीव=स्थावर-जङ्गम-प्राणी। मेह=मेघ, बादल। सहज सनेह=स्वाभाविक प्रेम।

(२९५)

डोलत बिपुल बिहङ्ग बन, पियत पोषरिन बारि।
सुजस-धवल चातक नवल, तुही भुवन दसचारि॥

शब्दार्थ—पोपरिन-बारि=तलैयों का पानी। सुजस=सुकीर्ति। धवल=सफेद। नवल=नया। दस चारि=चौदह।

(२९६)

मुख-मीठे मानस मलिन, कोकिल मोर चकोर।
सुजस धवल चातक नवल, रह्यो भुवन भरि तोर॥

शब्दार्थ—मुख मीठे=मिठबोला। कोकिल=पिक, कोयल। भुवन भरि रह्यो=संसार में व्याप्त है।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में भेदकातिशयोक्ति अलङ्कार है।

नोट—(१) कोयल की बोली यद्यपि मधुर होने पर भी विरहियों को दुखदायिनी है। (२) मोर देखने में सुन्दर होने पर भी हृदय उसका ऐसा कठोर है कि, वह साँप को खा जाता है। (३) चकोर अग्निभक्षक पक्षी है। इसकी बोली अच्छी होने पर भी इसका उदर ऐसा कठोर है कि, आग तक को पचा जाता है।

(२९७)

बास बेस बोलनि चलनि, मानस मञ्जु मराल।
तुलसी चातक प्रेम की, कीरति बिसद बिसाल॥

शब्दार्थ—बास=निवास-स्थान। बोलनि=बोली। चलनि=चाल। मानस=मन। मञ्जु=सुन्दर। मराल=हंस।

(२९८)

प्रेम न परखिय परुषपन, पयद-सिखावन एह।
जग कह चातक पातकी, ऊसर बरसै मेह॥

शब्दार्थ—पछितैये=पछताइये। परुषपन=कठोरपन। सिखावन=शिक्षा। गह=ग्रह। पातकी=पापी। ऊसर=मरुभूमि। मेह=बादल।

(अगले दोहे में इस दोहे का खुलासा कर दिया गया है।)

(२९९)

होइ न चातक पातकी, जीवन-दानि न मूढ़।
तुलसी गति प्रहलाद की, समुझि प्रेम-पथ गूढ़॥

शब्दार्थ—जीवनदानि=बादल। मूढ=मूर्ख। प्रेमपथ=प्रेम का मार्ग। गूढ़=गुप्त, गहन।

(३००)

गरज आपनी सबन को, अरज करत उर आनि।
तुलसी चातक चतुर भो, जाचक जानि सुदानि॥

शब्दार्थ—गरज=स्वार्थ। अरज=प्रार्थना, विनती। उर आनि=मन में समझ कर।

(३०१)

बरग चङ्गुगत चातकहि, नेम प्रेम की पोर।
तुलसी परबस हाड़ पर, परिहैं पुहुमी नीर॥

शब्दार्थ—बरग=बाज। चगुगत=पंजे में फँसा हुआ। नेम=नियम। परवश=शत्रु के वश में पड़कर। पर=पंख। पुहुमी-नीर=पृथ्वी का जल।

(३०२)

बध्यो बधिक परयो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेमपट, मरतहु लगी न खोंच॥

शब्दार्थ—बध्यो=मारा। बधिक=बहेलिया। पुन्यजल=पवित्र जल। प्रेमपट=प्रेमरूपी वस्त्र। मरतहु=मरते दम भी। खोंच=खरोंच।

(३०३)

अण्ड फोरि कियो चेटुवा, तुष परयो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर, डारयो बाहिर बारि॥

शब्दार्थ—चेटुवा=पक्षी का शावक, चिड़िया का बच्चा। तुष=भूसी। निहारि=देखकर। गहि=पकड़ कर। चंगुल=पंजा। बारि=पानी।

(३०४)

तुलसी चातक देत सिख, सुतहि बार ही बार।
तात न तर्पन कीजियो, बिना बारिधर धार॥

शब्दार्थ—सिखदेत=उपदेश देता है। तर्पण=पुरुषाओं अथवा पितरों के नाम पर जलदान। बारिधर धार=मेघ से गिरती हुई जल की धारा।

(३०५)

सोरठा

जियत न नाई नारि, चातक घन तजि दूसरहि
सुरसरिहू को बारि, मरत न माँगेउ अरध जल।

शब्दार्थ—जियत=जीते जो। नाई=झुकाई, नीची की। नारि=गर्दन। तजि छोड़कर। सुरसरि हू को वारि=गंगाजल भी। अरध जल=पानी की बूँद थोड़ा सा भी पानी।

(३०६)

सोरठा

सुन रे तुलसीदास, प्यास पपीहहिँ प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास, जो अँचवै जल स्वाति को॥

शब्दार्थ—परिहरि=छोड़कर। चारिउमास=वर्षाकाल के चार मास। अँचवे=आचमन करता है। स्वाति को जल=स्वाती नक्षत्र में वर्षा हुआ पानी।

(३०७)

जाँचै बारह मास, पियै पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही मेह मन॥

शब्दार्थ—जाँचै=माँगता है। जान्यौ=जान लिया। मन जोगवत=मन मे रखता है। नेही=प्रेमी। मेह=मेघ।

(३०८)

दोहा

तुलसी के मत चातकहि, केवल प्रेम-पियास।
पियत स्वाति-जल जान जग, जाचक बारह मास॥

शब्दार्थ—मत=विचार, सम्मति। जाचक बारह मास=सदा भिखारी बना रहता है। बारह मास=सदा, हमेशा।

(३०९)

आलवाल मुकुता-हलनि, हिय सनेह-तरु-मूल।
होइ हेतु चित चातकहि, स्वाति सलिल अनुकूल॥

शब्दार्थ—आलवाल=क्यारी। मुकुताहलनि=मुक्ताओं के, मोतियों की। सनेह-तरु-मूल=प्रेमरूपी वृक्ष की जड़। अनुकूल=पक्ष में।

एकाङ्गी प्रेम

(३१०)

द्विवि रसना तनु स्याम है, बङ्क चलनि विषखानि।
तुलसी जस स्रवननि सुन्यो, सीस समरप्यो आनि॥

शब्दार्थ—द्विवि=दो। बङ्क=टेढ़ी। विषखानि=विषपूर्ण। स्रवननि=कानों से। समरप्यो=दे दिया। आनि=लाकर।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में काव्यार्थापत्ति अलङ्कार है।

नोट—साँप पकड़ने के लिये सपेरा मन्त्र पढ़ पढ़ कर, सर्प की प्रशंसा करने लगता है। अपनी प्रशंसा सुन, सर्प उस पर प्रसन्न हो जाता है और दौड़कर उसके निकट पहुँच जाता है। तब उस प्रेममुग्ध सर्प को सपेरा पकड़ लेता है।

(३११)

उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुचीं, अन जल सींचे रूख॥

शब्दार्थ—उष्णकाल=ग्रीष्मकाल। खिन=खिन्न। मगपथी=राही, बटोही। ऊख=ऊष्म, गर्म। बतिआं=बातें। ना रुचो=अच्छी नहीं लगी। अन=अन्य, दूसरे। रूख=वृक्ष, पेड़।

(३१२)

अन जल सींचे रूख की, छाया तें बरु घाम।
तुलसी चातक बहुत हैं, यह प्रबीन को काम॥

शब्दार्थ—अन जल सींचे=अन्यजल (स्वाती के जल से भिन्न) से सींचे गये। बरु=बल्कि। छाया तें घाम=छाया से बल्कि घाम अच्छा है। प्रवीन=चतुर, चालाक।

(३१३)

एक अङ्ग जो स्नेहता, निसि दिन चातक नेह।
तुलसी जासों हित लगै, ओहि अहार ओहि देह॥

शब्दार्थ—एक अङ्ग जो स्नेहता=जो एकाङ्गी प्रेम है। निसि-दिन=निरन्तर, सर्वदा। जासों हित लगे=जिसे अच्छा लगता है। ओहि=उसको।

नोट—जो एक ही ओर से हो, वह एकाङ्गी प्रेम कहलाता है। जैसे दीपक और पतङ्ग का, चन्द्र और चकोर का तथा चातक और मेघ का।

'प्रेमपट'

(३१४)

आपु व्याध को रूप धरि, कुहो कुरङ्गहिं राग।
तुलसी जो मृगमन मुरै, परै प्रेमपट दाग॥

शब्दार्थ—आपु=स्वयं। कुहो=चाहे मारे। कुरङ्गहिं=मृग को। राग=स्वर। (इस स्थान पर सङ्गीत का अर्थ है।) मृगमेन=हिरन का मन। मुरै=मुड़जावे। प्रेमपट=प्रेमरूपी वस्त्र। दाग=धब्बा।

अलङ्कारपरिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

नोट—सङ्गीत-प्रेमी होने के कारण, बहेलिये, मृगों को वीणा बजाकर भी पकड़ लिया करते हैं।

मणि के प्रति सम्बोधन

(३१५)

तुलसी मनि निज दुति फनिहिं, व्याधहि देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ न आँधरो, ताते प्रेम न जाइ॥

शब्दार्थ—मनि=मणि अर्थात् सर्प के मस्तक की मणि। दुति=द्युति, प्रकाश। फनिहिं=फणधर सर्प को।

नोट—अनेक बूढ़े सर्पों के फनों के ऊपर मणि रहा करती है। ऐसे सर्प मणिधारे कहलाते हैं। प्रवाद है कि, रात के समय चरने को मैदान में जाते समय मणिधारा साँप उगल कर मणि को भूमि पर रख देता है और अपनी पूँछ उस मणि के निकट रख ओस चाटता है। उसकी घात में लगे रहने वाले सपेरे घात पा, उस मणि पर गोबर थोप देते हैं। ऐसा करने से मणि छिप जाती है और मणि का प्रकाश लुप्त हो जाता है। सर्प उस मणि के वियोग में अन्धा हो जाता है और सिर पटक पटक कर वहीं तड़प कर मर जाता है।

कमल और उसका स्वाभाविक प्रेम

(३१६)

जरत तुहिन लखि वनजबन, रवि दै पीठि पराउ।
उदय विकस अथवत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ॥

शब्दार्थ—तुहिन=तुषार, पाला। वनज=कमल। उदय=उगना, उदय होना। विकस=खिलना, प्रसन्न होना। अथवत=अस्त होते हुए। सकुच=सकुचना, दुखी होना। सहज=स्वाभाविक। सुभाउ=स्वभाव।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे उल्लासालङ्कार है।

मीन का प्रेम

(३१७)

देउ आपने हाथ जल, मीनहिँ माहुर घोरि।
तुलसी जियै जो वारि बिनु, तो तु देहि कवि खोरि॥

शब्दार्थ—मीनहिँ=मछली को। माहुर=विष, जहर। घोरि=घोलकर। खोरि=दोष।

(३१८)

मकर उरग दादुर कमठ, जलजीवन जलगेह।
तुलसी एकै मीन को, है साँचिलो सनेह॥

शब्दार्थ—मकर=मगर, नक्र। उरग=छाती से चलनेवाला अर्थात् सर्प। दादुर=मेढ़क। कमठ=कछुवा। जलजीवन=जिसका जल ही जीवन है। जलगेह=जिसका घर जल है।

स्वाभाविक स्नेह

(३१९)

तुलसी मिटै न मरि मिटेहु, साँचो सहज सनेह।
मोरसिखा बिनु मूरि हू, पलुहत गरजत मेह॥

शब्दार्थ—मोरसिखा=मयूरशिखा, यह एक प्रकार की जड़ी या बूटी है जो वर्षाऋतु में बादल के बरसते ही हरी भरी हो जाती है। बिनु मूरिहू=बिना जड़ की होने पर भी। पलुहत=पनपती है। गरजत=गरजते ही। मेह=मेघ, बादल।

मौन-प्रशंसा

(३२०)

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै, कहत करत सब कोइ।
तुलसी मीन पुनीत तेँ, त्रिभुवन बड़ो न कोइ॥

शब्दार्थ—सुलभ=सहज में मिलने योग्य। प्रीतम=प्यारा पुनीत=पवित्र। त्रिभुवन=तीनों भुवन।

अलङ्कारपरिचय—इस दोहे मे अत्युक्ति अलङ्कार है।

इष्टदेव

(३२१)

तुलसी जप-तप-नेम व्रत, सब सब ही तें होइ।
लहै बड़ाई देवता, इष्टदेव जब होइ॥

शब्दार्थ—लहै बड़ाई=यश पाता है। इष्टदेव=आराध्य देव।

नोट—साधक जिस देवता को, मन्त्र-जप द्वारा अपने ऊपर प्रसन्न कर, अपने वश में कर लेता है, वह उसका इष्टदेव कहलाता है। ऐसा देवता अपने साधक की मनोकामनाएँ पूर्ण करता है और उसके इच्छानुसार चलता है।

मैत्री

(३२२)

कुदिन हितू सो हितु सुदिन, हितु अनहितु किन होइ।
ससि छवि हर रवि सदन तउ, मित्र कहत सब कोइ॥

शब्दार्थ—कुदिन=बुरे दिन। हितू=हितकारी, मित्र। सुदिन=अच्छे दिन। हितू=मित्र। अनहितू=शत्रु। ससि=शशि, चन्द्रमा। रवि-सदन=सूर्यलोक, सूर्यमण्डल। तउ=तब भी। मित्र (इसमें श्लेष है।) (१) हितकारी, दोस्त। (२) सूर्य।

(३२३)

कै लघु कै बड़ मीत भल, सम सनेह दुख सोइ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस, मिले महाविष होइ॥

शब्दार्थ—कै=या तो। बड़=बड़ा। मीत=मित्र। भल=भला। सम=बराबर। मधु=शहद। सरिस=समान। महाविष=ज़हर।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दृष्टान्तालङ्कार है।

(३२४)

मान्य मीत सों सुख चहै, सो न छुवै छलछाँह।
ससि त्रिसङ्कु कैकेइ गति, लखि तुलसी मन माँह॥

शब्दार्थ—मान्य=माननीय। मीत=मित्र। छुवै=स्पर्श करे। छाँह=छाया, परछाँही। गति=दशा। लखि=देखकर, विचारकर। माँह=में।

कथा-प्रसङ्ग—(१) चन्द्रमा ने विश्वासघात कर अपनी गुरुपत्नी तारा के साथ खोटा काम किया था, इसके लिये चन्द्रमा की देवसमाज में बड़ी बदनामी हुई थी।

(२) राजा त्रिशङ्कु सूर्यवंशी राजा थे और अयोध्या में राज करते थे। एक बार जब उनके कुलगुरु वसिष्ठ अन्यत्र यज्ञ कराने गये हुए थे, तब राजा ने यज्ञ करना चाहा। वसिष्ठ ने कहलाया कि, मैं यह यज्ञ समाप्त कर तुमको यज्ञ कराऊँगा। उस समय तो त्रिशङ्कु ने कुलगुरु का यह कहना मान लिया, किन्तु पीछे दूसरे को गुरु मान, यज्ञ किया। त्रिशङ्कु के इस कपट व्यापार से वसिष्ठजी क्रुद्ध हो गये और उसे शाप दिया, जिससे राजा चाण्डालत्व को प्राप्त हो स्वर्गगमन से वञ्चित हो गया। इस पर विश्वामित्र ने निज तपोबल से राजा को सशरीर स्वर्ग पहुँचाया, किन्तु स्वर्ग से वह ढकेल दिया गया। तब से वह राजा औंधा मुँह किये अधर में लटका हुआ है।

(३) रानी कैकेयी ने अपने पति महाराज दशरथ को धोखा दे, श्रीरामजी को वनवास दिलाया, अत. अपयश का टीका उसके माथे पर सदा के लिये लग गया।

(३२५)

कहिय कठिन कृत कोमलहु, हित हठि होइ सहाइ।
पलक पानि पर ओड़ियत, समुझि कुघाइ सुघाइ॥

शब्दार्थ—कहिय=कहना चाहिये। कृत=कार्य। हठि=जबरदस्त। सहाइ पलक=आँखों की पपनी। पानि=पाणि, हाथ। कुघात=कड़ी चोट। सुघाइ=हल्की चोट। ओडिअत=ओड़ा जाता, रोका जाता है।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

(३२६)

तुलसी वैर सनेह दोउ, रहित विलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिँ, निन्दहिँ सुर-सरि-बारि॥

शब्दार्थ—चारि-विलोचन रहित=चारों आँखों से रहित। चार आँखें—दो चर्मनेत्र और दो ज्ञाननेत्र। सुरा=शराब। सेवरा=कुछ करामात दिखला लोगों को ठगनेवाले साधु-वेष-धारी ठगों का एक फिर्क़ा। सुर-सरि-बारि=गङ्गाजल।

"प्रेम-पिहानी"

(३२७)

रुचै माँगनेहि माँगिबो, तुलसी दानिहि दानु।
आलस अनख न आचरज, प्रेमपिहानी जानु॥

शब्दार्थ—रुचै=पसंद आता है, भला लगता है। माँगनेहि=मँगते को। अनख=चिढ़। अचरज=आश्चर्य। पिहानी=ढक्कन। जानु=जानो।

गालीगलौज की उत्पत्ति

(३२८)

अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध न गँवार॥

शब्दार्थ—अमिय=अमृत। गारि=गाली। करतार=ब्रह्मा। जननि=जननी, पैदा करनेवाली। जुग=दो। बुध=पण्डित। गँवार=मूर्ख।

हृदय-शून्यता

(३२९)

सदा न जे सुमिरत रहहिं, मिलि न कहहिं प्रिय बैन।
तापै तिन्हके जाहिं घर, जिनके हिये न नैन॥

शब्दार्थ—तापै=तिस पर भी। हिय=हृदय मे। हिये न नैन=ज्ञान-शून्य।

स्वार्थियों का प्रेम

(३३०)

हित पुनीत सब स्वारथहि, अरि असुद्ध बिनु चाँड़।
निज मुख मानिक सम दसन, भूमि परे ते हाड़॥

शब्दार्थ—पुनीत=पवित्र। अरि=शत्रु, वैरी। असुद्ध=अपवित्र। चाँड़=चाह, इच्छा। मानिक=रत्न विशेष, चुन्नी। दसन=दाँत। परेते=पड़ने से।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उपमा अलङ्कार है।

प्रेम का मार्ग

(३३१)

माखी काक उलूक बक, दादुर से भये लोग।
भले ते सुक पिक मोर से, कोउ न प्रेमपथ जोग॥

शब्दार्थ—जोग=योग्य।

नोट—इस दोहे मे जिन पक्षियों का उल्लेख किया गया है, उनका स्वभाव उनके नाम के सामने नीचे लिख दिया जाता है।

माख=मक्खी—निष्प्रयोजन हानि करनेवाली।

उलूक=उल्लू—मूर्खता पूर्ण।

बक=बगुला—छली ।

दादुर=मेढक—बकवादी ।

सुक=तोता—दु शील-बेमुरव्वत ।

पिक=कोकिल—स्वार्थी ।

मोर=मयूर—निष्ठुर हृदय ।

अलङ्कार-परिचय—इसमें <u>कर्मानुत्तोमालङ्कार</u> है ।

(३३२)

हृदय कपट बर बेष धरि, बचन कहैं गढ़ि छोलि ।
अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिये मन खोलि ।

शब्दार्थ—बरबेष=सुन्दर वेष । गढ़ि छोलि=रच-रचकर बनाकर । बचन कहैं गढ़ि छोलि=बनावटी बातें कहते हैं । अब के वर्त्तमान काल के, कलियुग के । मन खोलि=स्पष्ट, मन खोलकर

अलङ्कार-परिचय—इसमें <u>पूर्णोपमालङ्कार</u> है ।

बनावट

(३३३)

चरन चोंच लोचन रँगै, चलै मराली चाल ।
छीर-नीर-बिवरन समय, बक उघरत तेहि काल ।

शब्दार्थ—चरन=पैर । लोचन=आँख । छीर-नीर-बिवरन=दूध और पानी का विवेक । मराली चाल=हँस के समान चाल । बक=बगुला । उघरत=प्रकट हो जाता है, भेद खुल जाता है ।

सज्जन-दुर्जन वर्णन

(३३४)

मिलै जो सरलहि सरल ह्वै, कुटिलन सहज बिहाइ।
सो सहेतु ज्यौं वक्रगति, व्याल न बिलै समाइ॥

शब्दार्थ—सरलहि=सीधे को। कुटिलन=दुर्जनों को। सहज बिहाइ=स्वभावतः छोड़ना है। सो सहेतु=वह कारण युक्त है। व्याल=सर्प। बिलै-समाइ=बिल में घुसता है।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरणालङ्कार है।

(३३५)

कृपधन सखहिं न देव दुख, मुयेहु न माँगव नीच।
तुलसी सज्जन की रहनि, पावक पानी बीच॥

शब्दार्थ—कृपधन=गरीब। सखहिं=मित्र को। मुयेहु=मरने पर भी। पावक=अग्नि। पावक पानी बीच=अर्थात् बड़े कष्ट में रहना।

(३३६)

सङ्ग सरल कुटिलहिं भये, हरि-हर करहिं निबाहु।
ग्रह गनती गनि चतुर विधि, कियो उदर-बिनु राहु॥

शब्दार्थ—ग्रह गिनती=ग्रहों को गिनते। गनि=गिनकर। उदर=पेट।

कथा-प्रसङ्ग—उदर बिनु राहु—पुराणान्तर में राहु की कथा इस प्रकार पायी जाती है। एक बार देवनपङ्क्ति में एक राक्षस, देवता जैसा अपना रूप बना, घुस गया और उनके पास बैठ अमृत पान करने लगा। किन्तु चन्द्र और सूर्य ने उसको ताड़ लिया और विष्णु ने झट सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया। सिर कट जाने पर भी वह मरा नहीं—क्योंकि, अमृत उसके मुख में जा चुका था। अतः उसका धड़ और सिर—दोनों ही जीवित थे। इस पर ब्रह्मा जी ने उस राक्षस के शरीर के दोनों भागों को देवताओं ही में मिला लिया और धड़ का नाम केतु और कटे हुए सिर का नाम राहु रख दिया। तब से राहु और केतु ग्रहों में गिने जाते हैं। अन्य ग्रहों से इन दोनों की चाल विपरीत होने से राहु कुटिल-गति-गामी कहलाता है।

(३३७)

नीच निचाई नहिं तजै, सज्जन हू के सङ्ग।
तुलसी चन्दन विटप बसि, बिनु विष भये न भुअङ्ग॥

शब्दार्थ—विटप=वृक्ष। बसि=बस कर। भुअङ्ग=भुजङ्ग, सर्प।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(३३८)

भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीचु।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु॥

शब्दार्थ—लहै=शोभा देता है। सुधा=अमृत। सराहिय=प्रशंसा की जाती है। गरल=विष।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(३३९)

मिथ्या माहुर सज्जनहि, खलहि गरल सम साँच।
तुलसी छुवत पराइ ज्यों, पारद पावक आँच॥

शब्दार्थ—माहुर=विष, जहर। पराइ=भगजाते है। पारद=पारा। पावक=आग। आँच=आग।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे उदाहरण अलङ्कार है।

(३४०)

सन्त सङ्ग अपवर्ग कर, कामी भवकर पन्थ।
कहहिँ साधु कवि कोविद, स्रुति पुरान सद्ग्रन्थ॥

शब्दार्थ—अपवर्ग=मोक्ष। कामी=इच्छुक, विषयी। भवकर-पन्थ=संसार का रास्ता। कोविद=पण्डित। स्रुति=वेद। सद्ग्रन्थ=उत्तमोत्तम ग्रन्थ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे शब्दप्रमाणालङ्कार है।

(३४१)

सुकृत न सुकृती परिहरै, कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले, गीधराज मारीच॥

शब्दार्थ—सुकृत=अच्छा कार्य। सुकृती=पुण्यात्मा। परिहरे=छोड़ता है। मरत=मरते समय। सिखावन=शिक्षा।

नोट—१—जटायु ने अपने अन्तिम जीवन को परोपकार में लगाया और मरते समय सीताजी का पता श्रीरामचन्द्रजी को बतला पुण्य कमाया।

२—मारीच रावण के दबाव से मायामृग बना और श्रीरामजी को आश्रम से दूर ले गया। वहाँ वह श्रीरामजी के बाण से मारा गया, किन्तु मरते समय भी उसने कपट भाव न त्यागी और श्रीरामजी के समान कण्ठस्वर से "हा लक्ष्मण! हा सीते" कह, सीताजी को धोखा दिया।

(३५२)

सुजन सुतरु बन ऊख सम, खल टंकिका रुखान।
परहित अनहित लागि सब, साँसति सहत समान॥

शब्दार्थ—सुतरु=अच्छे वृक्ष। बन=कपास। ऊख=ईख। खल=दुष्ट जन। टंकिका=टाँकी। रुखान=रुखानी। (बढ़ई का एक औजार) साँसति=कष्ट, दुःख।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उपमा अलङ्कार है।

(३५३)

पियहिं सुमनरस अलि विटप, काटि कोल फल खात।
तुलसी तरुजीवी जुगल, सुमति-कुमति की बात॥

शब्दार्थ—सुमन रस=पुष्परस, पुष्पराग। अलि=भ्रमर, भौंरा। विटप=पेड़। कोल=जंगली, मनुष्यों की एक जाति विशेष। तरुजीवी=वृक्षों से जीविका चलानेवाले। जुगल=दोनों। सुमति, कुमति की बात=समझ का फेर या सुबुद्धि कुबुद्धि की बात।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में क्रमालङ्कार है।

अवसर पर चूकना

(३४४)

अवसर कौड़ी जो चुकै, बहुरि दिये का लाख ?
दुइज न चन्दा देखिये, कहा उदयभरि पाख ॥

शब्दार्थ—अवसर=मौका। चुकै=कम हो जाना। बहुरि=फिर। दुइज=द्वितीया तिथि। पाख=पखवारा।

अपकारियों की संख्या

(३४५)

आन अनभले को सबहिं, भले भलेहू काउ।
सींग सूँड़ रद लूम नख, करत जीव जड़ घाउ ॥

शब्दार्थ—रद=दाँत। लूम=पूँछ। जड़=मूर्ख। घाउ=क्षत, चोट।

(३४६)

तुलसी जगजीवन अहित, कतहुँ कोउ हित जानि।
सोषक भानु कृसानु महि, पवन एक घनदानि ॥

शब्दार्थ—अहित=शत्रु। कतहूँ कोउ=कहीं कोई। सोषक=सोखनेवाले। भानु=सूर्य। कृसानु=अग्नि। महि=भूमि, पृथिवी। एक=केवल। घन=मेघ, बादल। दानि=देनेवाला।

(३४७)

सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल॥

शब्दार्थ—सुधा=अमृत। करतूति=कार्य। कराल=कठिन। मानस=मानसरोवर। सकृत=केवल। मराल=हंस।

(३४८)

जलचर थलचर गगनचर, देव दनुज नर नाग।
उत्तम मध्यम अधम खल, दस गुन बढ़त विभाग॥

शब्दार्थ—जलचर=पानी में रहनेवाले जीव, जैसे मछली कछुवे। थलचर=पृथिवी पर रहनेवाले जीव, जैसे गौ, बकरी, घोड़ा आदि। गगनचर=आकाशचारी, यथा कौवा, चील, बाज आदि। दनुज=दानव। नाग=साँप।

(३४९)

देवता और नृप की परीक्षा

बलि मिस देखे देवता, कर मिस मानवदेव।
मुए मार सुविचार-हत, स्वारथ-साधन एव॥

शब्दार्थ—बलि=बलिदान। मिस=बहाना। कर=राज्य कर, मालगुजारी, राजस्व। मानवदेव=राजा। मुए मार=मरे को मारनेवाले।

सज्जनोक्ति

(३५०)

सुजन कहत भल पोच पथ, पापि न परखे भेद ।
करमनास सुरसरित मिस, बिधि-निषेध बद बेद ॥

शब्दार्थ—करमनास=कर्मनाशा नदी । सुरसरि=गङ्गा । विधि-निषेध=कर्त्तव्याकर्त्तव्य । वद=वर्णन करते हैं ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे शब्दप्रमाणालङ्कार है ।

नोट—प्रवाद है कि, त्रिशङ्कु राजा की लार से कर्मनाशा नदी की उत्पत्ति हुई है । अत धर्मशास्त्रानुसार इसके जलस्पर्श तक का निषेध है ।

छोड़ने और संग्रह करने योग्य पदार्थ

(३५१)

मनि भाजन मधु पारई, पूरन अमी निहारि ।
का छाँड़िय का संग्रहिय, कहहु बिबेक बिचारि ॥

शब्दार्थ—मनि भाजन=मणि जड़ाऊ पात्र । मधु=मदिरा । पारई=परई, सनाकी, परैथा । पूरन=पूर्ण, भरा हुआ । निहारि=देखकर ।

वैर-प्रीति की परीक्षा

(३५२)

उत्तम मध्यम नीच गति, पाहन सिकता पानि ।
प्रीति परीच्छा तिहुँन की, बैर बितिक्रम जानि ॥

शब्दार्थ—पाहन=पत्थर। सिकता=बालू। परिच्छा=परीक्षा। तिहुँन की=तीनों की। बितिक्रम=उलटा।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में यथासंख्या अलङ्कार है।

नोट—पत्थर पर की, बालू पर की और पानी पर की लकीर की सी प्रीति क्रम से उत्तम, मध्यम और नीच है। बैर का क्रम इसका उलटा है।

पाँच प्रकार

(३५३)

पुन्य प्रीति पति प्रापतिउ, परमारथ-पथ पाँच।
लहहिं सुजन परिहरहिं खल, सुनहु सिखावन साँच॥

शब्दार्थ—पुण्य=अच्छे काम। पति=प्रतिष्ठा। प्रापतिउ=लाभ। परमारथ-पथ=मोक्ष का मार्ग। लहहिं=प्राप्त करते हैं। परिहरहिं=त्याग करते हैं, छोड़ते हैं।

ऊँच नीच व्यवहार

(३५४)

नीच निरादर ही सुखद, आदर सुखद बिसाल।
कदरी बदरी बिटप गति, पेखहु पनस रसाल॥

शब्दार्थ—बिसाल=ऊँचलोग, बड़े आदमी। कदरी=कदली, केला। बदरी=बेर। बिटपगति=वृक्ष की दशा। पेखहु=देखहु। पनस=कटहल। रसाल=आम।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

निज आचरण

(३५५)

तुलसी अपनो आचरन, भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित, लहसुनहूँ को बासु॥

शब्दार्थ—कासु=किसको। बसात=बसाता है, बदबू करता है। बासु=दुर्गन्धि।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

प्रशंसनीय-सज्जन

(३५६)

बुध सो विवेकी बिमल मति, जिनके रोष न राग।
सुहृद सराहत साधु जेहि, तुलसी ताको भाग॥

शब्दार्थ—बुध=पण्डित। सुहृद=सुन्दर हृदयवाले। सराहत=प्रशंसा करते हैं। ताको=उसका।

(३५७)

आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ॥

शब्दार्थ—आपु आपु कहँ=अपने अपने को। अपने कहँ=अपने सम्बन्धी कुटुम्बादि के लिये।

अलङ्कारपरिचय—इस दोहे मे सारालङ्कार है।

सुसङ्ग और कुसङ्ग

(३५८)

तुलसी भलो कुसङ्ग तें, पोच सुसङ्गति होइ।
नाउ किन्नरी तीर असि, लोह बिलोकहु लोइ ॥

शब्दार्थ—पोच=बुरा। नाउ=नाव, नौका। किन्नरी=सितार, सारङ्गी। असि=तलवार। लोइ=लोग।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(३५९)

गुरु-सङ्गति गुरु होइ सो, लघु सङ्गति लघु नाम।
चार पदारथ में गनैं, नरक द्वार हूँ काम ॥

शब्दार्थ—गुरु=गुरुजन। नरद्वार हुँ=नरक ले जाने वाला। चार पदारथ=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। गनै=गिनते हैं।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(३६०)

तुलसी गुरु लघुता लहत, लघु संगति परिनाम।
देवी देव पुकारियत, नीच नारि-नर नाम ॥

शब्दार्थ—लहत=पाते हैं। परिणाम=फल। पुकारिय=पुकारे जाते हैं।

(३६१)

तुलसी किये कुसङ्ग-थिति, होहिँ दाहिने बाम।
कहि सुनि सकुचिय सूम-खल, गत हरि-शङ्कर नाम॥

शब्दार्थ—थिति=स्थिति, वास=स्थान। दाहिने=अच्छे, अनुकूल। बाम=बुरे, विरुद्ध। सूम-खल-गत=कञ्जूसों और दुष्टों के फेर में पड़े हुए।

(३६२)

बसि कुसंग चह सुजनता, ताकी आस निरास।
तीरथहू को नाम भो, 'गया' मगह के पास॥

शब्दार्थ—तीरथ=विष्णुपाद नामक तीर्थ। गया=(इस शब्द में यहाँ निरुक्ति अलङ्कार है) (१) गया नामक तीर्थ। (२) निकम्मा। गया गुज़रा। (३) जाना धातु का यह भूतकाल का रूप है। मगह=मगध देश। भो=हुआ।

(३६३)

रामकृपा तुलसी सुलभ, गङ्ग सुसङ्ग समान।
जो जल परै जो जन मिलै, कीजै आपु समान॥

शब्दार्थ—गङ्ग=गङ्गाजी। सुसङ्ग=सत्सङ्ग।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उपमा अलङ्कार है।

(३६४)

ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होइ कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥

शब्दार्थ—ग्रह=नवग्रह। भेषज=दवा। पट=वस्त्र। कुजोग=बुरी सङ्गत। सुलच्छन लोग=बुद्धिमान लोग।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में यथासंख्य अलङ्कार है।

(३६५)

जनम जोग में जानियत, जग बिचित्र गति देखि।
तुलसी आखर अङ्क रस, रंग बिभेद बिसेखि॥

शब्दार्थ—जनम जोग=जन्म समय में पड़े हुए ग्रहों के योग। जानियत=जाना जाता है। आखर=अक्षर। रस=षटरस। रंग=सात रंग। बिभेद बिसेखि=भेद विशेष।

(३६६)

आखर जोरि बिचार करु, सुमति अङ्क लिखि लेखु।
जोग कुजोग सुजोग-मय, जग-गति समुझि बिसेखु॥

शब्दार्थ—सुमति=चतुर जन। लेखु=हिसाब लगाओ। जग-गति=संसार की दशा। बिसेखु=विशेषता।

अर्थ—हे चतुर जनो! अक्षरों को जोड़ो और विचारो और अङ्कों को लिखकर हिसाब लगा लो। ऐसा करने से तुम संसार की गति की इस विशेषता को समझ लोगे कि, इसमें जोग है, कुजोग है और सुजोग है।

इसका अभिप्राय यह है कि, अच्छे अक्षरों के संयोग से अच्छे शब्द और बुरे अक्षरों के संयोग से बुरे शब्द बनते हैं । जैसे एक शब्द है "योग" । इसमें यदि "कु" जोड दें, तो होता है, कु+योग, जिसका अर्थ होगा बुरा योग । यदि योग में हम सु जोड दें, तो होगा सु+योग अर्थात् अच्छा योग । इसी प्रकार अङ्कों के आपस में उचित अथवा अनुचित मेल से अङ्कों का मूल्य घट बढ जाता है ।

यथा—६१, ७१, ८१ या ९१ के अङ्क सुयोग से अधिक मूल्यवान हो गये, किन्तु यदि इन्हींका कुयोग कर दिया जाय अर्थात् इनको उलट दिया जाय तो १६, १७, १८, १९ हो जाते हैं और इनका मूल्य घट जाता है । इन उदाहरणों को दिखलाने का उद्देश्य यह है कि जब जड पदार्थों पर भी सङ्ग दोष का प्रभाव पडता है, तब मनुष्यों पर इसका प्रभाव क्यों न पड़ेगा !

सुपथ

(३६७)

करु विचार चलु सुपथ भल, आदि मध्य परिनाम ।
उलटे जपे 'जारा मरा', सूधे 'राजा राम' ॥

शब्दार्थ—करु=करो । चलु=चलो । सुपथ=सुमार्ग । आदि=प्रारम्भ । परिनाम=परिणाम, अन्त । आदि-मध्य-परिनाम=सदैव, सर्वदा ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दृष्टान्त अलङ्कार है ।

अच्छे पुरुष की बुरी औलाद

(३३८)

होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम।
होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम॥

शब्दार्थ—दानि=दाता। सूम=कंजूस, कृपण। पावक=अग्नि धूम=धुवाँ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

गुण और दोष से युक्त संसार

(३३९)

जड़ चेतन गुन-दोष-मय, विस्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि-विकार।

शब्दार्थ—विस्व=संसार। करतार=ब्रह्मा। गहहिं=ग्रहण करते हैं। परिहरि=छोड़कर। विकार=दोष।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

गुणग्राहकता

(३४०)

सोरठा

पाट कीट तें होइ, ताते पाटम्बर रुचिर।
कृमि पालै सब कोइ, परम अपावन प्रान सम॥

शब्दार्थ—पाट=रेशम। कीट=कीड़ा जो रेशम उत्पन्न करता है। पाटम्बर=रेशमी कपड़े। रुचिर=सुन्दर। कृमि=कीड़ा। परम अपावन=अत्यन्त अपवित्र।

रसिकों की रीति

(३७१)

दोहा

जो-जो जेहि-जेहि रस मगन, तहँ सो मुदित मन मानि
रस-गुन-दोष विचारिवो, रसिक रीति पहिचान॥

शब्दार्थ—मुदित=आनन्दित। रस-गुन-दोष=रस के गुण और अवगुण। विचारिबो=विचारना।

'नाम-भेद'

(३७२)

सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम-भेद विधि कीन्ह।
ससि पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह॥

शब्दार्थ—सम=बराबर। तम=अन्धकार। दुहुँ पाख=शुक्ल और कृष्ण पक्ष। पोषक=पोषण करनेवाला। सोषक=सोखनेवाला, घटानेवाला।

भले लोगों की बदनामी

(३५३)

लोक वेद हूँ लौं दगो, नाम भले को पोच।
धर्मराज जम गाज पवि, कहत सकोच न सोच॥

शब्दार्थ—लोक वेद हूँ लौं=लोक और वेद में भी। दगो=प्रसिद्ध। गाज=(१) बिजली। (२) फेन। पवि=वज्र।

सज्जन-असज्जन-परीक्षा

(३५४)

विरुचि परखिये सुजन जन, राखि परखिये मन्द।
वड़वानल सोषत उदधि, हरष बढ़ावत चन्द॥

शब्दार्थ—बिरुचि=सहज में, तुरन्त। राखि=निकट रखकर। मन्द=दुष्ट जन। बड़वानल=समुद्र की आग। उदधि=समुद्र।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में विपरीतक्रमालङ्कार है।

प्रभु का आनुकूल्य

(३५५)

प्रभु सनमुख भये नीच नर, निपट होत विकराल।
रवि-रुख लखि दरपन फटिक, उगिलत ज्वाला-जाल॥

शब्दार्थ—मनमुख=अनुकूल। निपट=अत्यन्त। रुख=तरफ, ओर। दरपन=दर्पण, शीशा। स्फटिक=बिल्लौर पत्थर। उगिलत=उगलता है। ज्वाला-जाल=लपटों की राशि।

(३७६)

प्रभु-समीप-गत सुजन जन, होत सुखद सुबिचारि।
लवन-जलधि-जीवन-जलद, बरषत सुधा सुबारि॥

शब्दार्थ—प्रभु-समीप-गत=मालिक के निकट रहनेवाला। सुविचार=अच्छे विचारवाले। लवन-जलधि=खारी समुद्र। जीवन=जल। जलद=बादल। सुधा=अमृत। सुबारि=अच्छा पानी।

उत्तम-निकृष्ट व्यवहार

(३७७)

नीच निरावहिँ निरस तरु, तुलसी सींचहिँ ऊख।
पोषत पयद समान सब, विष पियूष के रूख॥

शब्दार्थ—निरावहिँ=निराते हैं, खेत में से घास फूस उखाड़ कर फेंक देते हैं। निरस=रस रहित। पोषत=पोसते हैं। पयद=बादल। पियूष=अमृत। रूख=वृक्ष, पेड़।

मेघ का अपराध नहीं

(३७८)

बरषि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को, जो जल जरै जवास॥

शब्दार्थ—विश्व=संसार। हरत=हरण करता है। ताप=गर्मी। अघ=दुःख। जवास=गङ्गा यमुना के कछार में उत्पन्न होनेवाला कटीला एक पौधा, जो बरसाती पानी पड़ते ही सूख जाता है।

भिखमंगो की मृत्यु

(३७९)

अमर दानि जाचक मरहिं, मरि-मरि फिरि-फिरि लेहिं।
तुलसी जाचक पातकी, दातहिं दूषन देहिं॥

शब्दार्थ—अमर=नहीं मरनेवाला। दानि=दाता। जाचक=मँगता। लेहि=लेते हैं। पातकी=पापी। दातहिं=देनेवाले को। दूषन=दोष। देहिं=देते हैं।

कुत्ते की अनजानकारी

(३८०)

लखि गयन्द लै चलत भजि, स्वान सुखानो हाड़।
गज-गुन मोल अहार बल, महिमा जान कि राड़॥

शब्दार्थ—गयन्द=गजेन्द्र, बड़ा हाथी। चलत भजि=भाग जाता है। स्वान=श्वान, कुत्ता। सुखानो=सूखा। मोल=मूल्य, कीमत। कि=क्या? राड़=दुष्ट।

अलङ्कार-परिचय—इसमें काकुवक्रोक्ति अलङ्कार है।

सिंह का प्रमाद

(३८१)

कै निदरहु कै आदरहु, सिँहहि स्वान सियार।
हरष विषाद न केसरिहि, कुञ्जर-गञ्ज निहार॥

शब्दार्थ—कै=चाहे। केसरिहिँ=सिंह को। कुञ्जर-गञ्ज निहार=गजों को मारनेवाला।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे विपरीतक्रमालङ्कार है।

दुष्टों की धृष्टता

(३८२)

ठाढ़ो द्वार न दै सकैं, तुलसी जे नर नीच।
निन्दहिँ बलि हरिचन्द को, 'कियो का करन दधीच'?

शब्दार्थ—न दै सकै=नहीं दे सकते हैं। ठाढ़ो द्वार=द्वार पर खड़े हुए को। निन्दहिँ=निन्दा करते हैं। का कियो ?=क्या किया ?

कथा-प्रसङ्ग—(१) दानवराज बलि एक विश्वविख्यात दानी थे। उनका प्रण था कि, उनके द्वार से कोई याचक विमुख न जाने पावेगा। इस प्रण की परीक्षा तथा देवताओं का काम साधने के लिये भगवान विष्णु वामन रूप धारण कर दानवराज के द्वार पर पहुंचे और तीन पग भूमि उनसे दान में माँगी। राजा बलि ने तुरन्त तीन पग भूमि दे दी। तब वामनजी ने विराट रूप धारण कर ढाई पग ही में सारी पृथिवी नाप

ली। आधा पग तो भी शेष रह गया। तब आधे पग को अपना पीठ पर नपवा, निज प्रण पूरा किया। दानवराज की ऐसी दानवीरता देख भगवान् विष्णु उन पर प्रसन्न हो गये तथा उनको पाताल का राज्य दे स्वयं उनके सदा के लिये द्वार-रक्षक बन गये।

(२) राजा हरिश्चन्द्र—सूर्यवंशी राजा थे। इन्होंने अपनी सत्य-प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये अपना सर्वस्व विश्वामित्र को दे डाला था और काशी में अपनी रानी तथा राजकुमार को बेच, स्वयं श्मशान पर चाण्डाल के सेवक बन मुर्दों के कफन लिया करते थे। इस विषम विपत्ति एवं लाञ्छना को सहकर भी हरिश्चन्द्र अपनी सत्य प्रतिज्ञा पर अटल बने रहे थे।

(३) राजा कर्ण—बड़े दानी थे। देवराज इन्द्र को, इन्होंने अपने कानों के कुण्डल और शरीर पर का कवच काट कर दिया था और अपने प्रण को पूरा किया था।

(४) दधीचि—देवासुर संग्राम हुआ, किन्तु देवराज इन दैत्यराज वृत्रासुर को न मार सके। तब देवगण राजर्षि दधीचि के पास गये और उनसे उनके शरीर की अस्थियाँ वज्र बनाने को माँगी। राजर्षि ने सहर्ष अपने हाड़ उनको दे दानियों में आचन्द्र-दिवाकर प्रसिद्धि पायी। उन्हींकी हड्डियों से बनाये गये वज्र से वृत्रासुर मारा गया था।

बड़े बूढ़ों का महत्व

(३८३)

ईस-सीस बिलसत बिमल, तुलसी तरल तरङ्ग।
स्वान सरावग के कहे, लघुता लहै न गङ्ग।

शब्दार्थ—ईस=शिव। बिलसति=शोभित है। तरल तरङ्ग=चञ्चल लहरें। सरावग=श्रावक सरावगी, जैनी। लघुता=नीचता।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे अवज्ञा अलङ्कार है।

(३८४)

तुलसी देवल देव को, लागे लाख करोरि।
काक अभागे हगि भर्यो, महिमा भई कि थोरि॥

शब्दार्थ—देवल=मन्दिर। देव को=देवता का। लागे=खर्च हुए। हग भरना=गखाना फिर देना, यह मुहावरा है।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे अवज्ञा अलङ्कार है।

(३८५)

निज गुन घटत न नाग-नग, परखि परिहरत कोल।
तुलसी प्रभु भूषन किये, गुञ्जा बढ़े न मोल॥

शब्दार्थ—नाग-नग=गजमुक्ता। परखि=पहचान। परिहरत=त्याग देते है। कोल=जगल मे रहनेवाले लोगो की एक जाति विशेष। प्रभु=श्रीकृष्ण। गुञ्जा=घुघची।

सूर्यरहित-दिन

(३८६)

राकापति षोडस उगहिँ, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन दव लाइये, बिनु रवि-राति न जाइ॥

शब्दार्थ—राकापति=चन्द्रमा। षोडस उगहिं=सोलहों कलाओं से उदय हों। दव=दावाग्नि।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में द्वितीय समुच्चयालङ्कार है।

चुगली खाने वाला चमगादड़

(३८७)

भलो कहै बिन जाने हू, बिनु जाने अपवाद।
ते नर गादुर जानि जिय, करिय न हरष-विषाद॥

शब्दार्थ—भलो कहै=अच्छा कहता है। अपवाद=निंदा—शिकायत। गादुर=चमगादड़।

द्वेषियों का परिणाम

(३८८)

पर-सुख-सम्पति देखि सुनि, जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिनके भाग तें, चलै भलाई भागि।

शब्दार्थ—पर-सुख-सम्पति=दूसरों की सुख-सम्पत्ति। जड़=मूर्ख।

परकीर्ति के नाशक

(३८९)

तुलसी जे कीरति चहहिं, परकीरति को खोइ।
तिनके मुँह मसि लागिहै, मिटिहि न मरिहैं धोइ॥

शब्दार्थ—पर=दूसरे का। खोइ=खोकर। मसि=स्याही। धोइ मरि हैं=धो धा कर मर जॉयगे।

मिथ्या अभिमान

(३९०)

तनु गुन धन महिमा धरम, तेहि बिनु जेहि अभिमान।
तुलसी जियत बिडम्बना, परिनामहुँ गत जान॥

शब्दार्थ—तनु=देह, शरीर। अभिमान=घमड। बिडम्बना=निन्दा। परिनामहु=परिणाम में, अन्त मे। गत=गया हुआ, नष्ट। जान=जाना।

प्रभुता की कामना

(३९१)

सासु ससुर गुरु मातु पितु, प्रभु भै चह सब कोइ।
होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ॥

शब्दार्थ—दूजी ओर को होनो=दूसरी ओर का होना। सास ससुर आदि की दूसरी ओर का होना अर्थात् पतोहू, दामाद, शिष्यादि। सुजन=चतुर। सराहिय=प्रशसा करनी चाहिये।

सज्जनों की सहज मान-मर्यादा

(३९२)

सठ सहि साँसति पति लहत, सुजन कलेस न काय।
गढ़ि-गुढ़ि पाहन पूजिये, गण्डकि-शिला सुभाय॥

शब्दार्थ—साँसति=कष्ट। पति=प्रतिष्ठा। कलेस=क्लेश, कष्ट। काय=देह। गढ़ि-गुढ़ि=काट छाँट कर अर्थात् मूर्ति बनाने पर। गण्डकि-शिला=शालिग्राम नामक शिला जो गण्डकी नदी में पायी जाती है। गण्डकी नदी पटना के पास गङ्गाजी में आकर गिरती है। सुभाय=स्वभावतः।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

राजाओं की मिथ्या प्रशंसा

(३९३)

बड़े विबुध-दरबार तें, भूमि-भूप दरबार।
जापक पूजक पेखियत, सहत निरादर-भार।

शब्दार्थ—विबुध=देवता। विबुध-दरबार=देव सभा। भूमि भूप=राजा जो पृथ्वी पर राज करते हैं। जापक-पूजक=जप करने वाले और पूजा करनेवाले। निरादर-भार=अपमान का बोझ।

निष्कपट-शिक्षा

(३९४)

बिनु प्रपञ्च छल भीख भलि, लहिय न दिये कलेस।
बावन बलि सों छल कियो, दियो उचित उपदेस॥

शब्दार्थ—बावन=विष्णु का वामनावतार।

नोट—(वामनजी की कथा के लिये [illegible] वें दोहे के नीचे का कथा-प्रसङ्ग देखो।)

(३९५)

भलो भले सोँ छल किये, जनम कनौड़ो होइ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति, बलि बावनगति जोइ॥

शब्दार्थ—जनम कनौडो होइ=जन्म भर दबकर रहना पड़ता है। कनौडों=कृतज्ञ दबैल। श्रीपति=विष्णु। लसति=विराजती हैं। जोइ=देखो।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

नोट—तुलसी और बलिवामन की कथा के लिये १८८ और ३८२ वें दोहे के नीचे के कथा-प्रसङ्ग देखो।

(३९६)

विबुध-काज बावन बलिहिँ, छलो भलो जिय जानि।
प्रभुता तजि बस भे तदपि, मन की गइ न गलानि॥

शब्दार्थ—विबुध-काज=देवकार्य। भे=हुए। गलानि=पश्चात्ताप, शोक।

टेढ़े से सब भयभीत रहते हैं

(३९७)

सरल-वक्र-गति पञ्चग्रह, चपरि न चितवत काहु।
तुलसी सूधे सूर ससि, समय बिडम्बित राहु॥

शब्दार्थ—वक्रगति=टेढ़ी चाल। पञ्चग्रह=मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि—ये पाँच ग्रह हैं। चापहि=धनुष। काहु=किसी से। सूर=सूर्य। समय विपर्जनि=समय के प्रभाव से निन्दा को प्राप्त हुआ।

नोट—मङ्गल आदि पाँचो ग्रह टेढ़ी चाल चलने वाले हैं, अतः ये वक्रगति वाले कहलाते हैं। सूर्य एवं चन्द्रमा सदा सीधी चाल चलते हैं।

दुष्टों के प्रति उपकार करने का फल

(३९८)

खल-उपकार विकार-फल, तुलसी जान जहान।
मेढुक मर्कट बनिक बक, कथा सत्य-उपखान॥

शब्दार्थ—विकार=बुरा। फल=परिणाम। मरकट=बानर। बनिक=बनिया। बक=बगुला। सत्य-उपख्यान=सत्योपाख्यान।

कथा प्रसङ्ग (१) एक बार अपने कुटुम्बियों से अप्रसन्न हो, एक मेढक ने अपने कुटुम्ब वालों का नाश करने के लिये एक साँप को न्योता दिया। साँप ने उसके सब कुटुम्बियों को खा डाला। जब और कोई न रह गया, तब वह सर्प अपने आमन्त्रणदाता मेढक को खा डालने की घात में लगा। सर्प का मानसिक भाव वह मेढक ताड़ गया और तब से उसने वहाँ जाना ही छोड़ दिया। अतः वह बच गया।

(२) एक बानर और एक मगर में घनिष्ट मैत्री थी। अतः बानर वन से बढ़िया बढ़िया फल ला, अपने मित्र मगर को नित्य खिलाया करता था। एक दिन मगर की माता ने कहा कि, जो बानर ऐसे मीठे

फल रोज़ खाया करता है, उसका कलेजा बड़ा मीठा होगा। अतः तुम मुझे उसका कलेजा ला दो। मन में दुःख तो हुआ, पर अपनी मादा को वह मगर नाराज़ भी करना नहीं चाहता था। अत वह जब धोखा दे, उस वानर को अपने घर ले जाने लगा, तब उस वानर ने रास्ते में मगर से पूछा कि, आज मुझ पर भौजाई साहबा की ऐसी कृपा क्यों है? मगर ने सोचा कि, बीच नदी में होने से वानर अब मेरे काबू में है ही। इससे झूठ क्यों बोलूँ। यह विचार उसने सच्ची बात कह दी। इस पर वानर के मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई और मन ही मन कुछ सोच समझकर उसने कहा—भाई! जब ऐसा ही था, तब तुमने मेरे घर पर ही यह बात क्यों न मुझसे कही। बतलाओ अब मैं क्या करूँगा—क्योंकि कलेजा तो मेरा मेरे घर पर ही है। यदि वहाँ मालूम हो गया होता तो उसे भी साथ लेता आता। मूर्ख मगर चालाक वानर की बात में आ गया। वह बोला मित्र! ऐसी बात है तो चलो लौटकर कलेजा ले आवें। यह कह मगर किनारे पर लौट आया। वानर उछल कर झट भूमि पर गया और अपने को सुरक्षित देख, मगर से कहा—तुम जैसे दुष्टों के साथ भलाई करने का यही फल होता है।

(३) कहानी है कि, किसी राजा के साथ एक बनिये का बड़ा याराना था। राजा एक बार एक मंत्र सिद्ध कर रहा था। उस कार्य में उसे एक स्त्री का पूजन करने की आवश्यकता पड़ी। राजा को मित्र जान बनिये ने अपनी स्त्री उसके यहाँ भेज दी। वह सुन्दरी थी। उसके रूप लावण्य को देख, राजा के मुँह में पानी भर आया। राजा ने उस बनैनी के साथ खोटा काम किया और बनिया पछताया किया।

(४) एक बक ने एक ब्राह्मण को कहीं पर धन होने का पता दिया। किन्तु उस कृतघ्न विप्र ने अन्त में उस उपकारी बक ही को मार डाला।

(३९९)

तुलसी खलबानी मधुर, सुनि समुझिय हिय हेरि।
राम-राज बाधक भई, मूढ़ मन्थरा चेरि॥

शब्दार्थ—खलबानी=दुष्टजनों की बोली। मधुर=मीठी। हिय हेरि=मन में विचार कर। बाधक भई=विघ्न डालनेवाली हुई। चेरी=दासी, बाँदी।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

नोट—अयोध्याधिपति महाराज दशरथ की छोटी रानी का नाम कैकेयी था। उसकी एक बाँदी थी, जिसका नाम मन्थरा था। इसी मन्थरा ने श्रीरामचन्द्र जी के विरुद्ध कैकेयी को भड़काया था।

(४००)

जोंक सूधिमन कुटिलगति, खल बिपरीति विचारु।
अनहित सोनित सोष सो, सोहित सोषनहार॥

शब्दार्थ—विपरीत=उल्टा। अनहित=खराब। सोनित=शोणित, रक्त, खून। सोष=सोखती है। सो=वह। सोषनहार=सोखनेवाला।

(४०१)

नीच गुड़ी ज्यों जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढील दिये भुइँ गिर परत, खैंचत चढ़त अकास॥

शब्दार्थ—गुड़ी=पतंग, कनकैया। सुनि लखि=देख सुनकर। ढील दिये=पतंग की डोरी ढीली कर देने से। खैंचत=पतंग की डोर अपनी ओर खींचने पर। चढ़त अकास=आकाश पर चढ़ती है।

अलङ्कार-परिचय—इसमें पूर्णोपमालङ्कार है।

खलों के वाग्बाण

(४०२)

भरदर बरसत कोस सत, बचैं जे बूँद बराइ।
तुलसी तेउ खल-बचन-सर, हिये गये न पराइ॥

शब्दार्थ—भरदर=खूब। बराइ=बर का कर, बचाकर। खल-बचन=दुष्टों के वचन। हिये गये=हृदय में लगे हुए। न पराइ=भाग नहीं गये।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में प्रौढ़ोक्ति अलङ्कार है।

स्नेह की सूक्ति

(४०३)

पेरत कोल्हू मेलि तिल, तिली सनेही जानि।
देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबी रिसानि॥

शब्दार्थ—पेरत=पेरते हैं। कोल्हू=तिलादि से तेल निकलने की कल। मेल=डाल कर। सनेही=(१) प्रेमी (२) तेल युक्त। देखिबी=देखेंगे। रिसानि=क्रोध।

निर्बलों का कालयापन

(४०४)

सहवासी काचो गिलहिँ, पुरजन पाक-प्रवीन ।
कालछेप केहि मिलि करहिँ, तुलसी खग मृग मीन ॥

शब्दार्थ—सहवासी=साथ के रहनेवाले । काचो=कच्चा ही । गिलहिँ=निगल जाते हैं । पुरजन=गाँववासी । पाक-प्रवीन=रसोई बनाने में होशियार । कालछेप=समय बिताना । केहि मिलि=किससे मिलकर ।

भगवान ही बचावें

(४०५)

जासु भरोसे सोइये, राखि गोद में सीस ।
तुलसी तासु कुचाल तेँ, रखवारो जगदीस ॥

शब्दार्थ—जासु भरोसो=जिसके विश्वास पर । कुचाल=खोटी चाल । रखवारो=रक्षक ।

असमायिक-मृत्यु

(४०६)

मार खोज लै सौंह करि, करि मत लाज न त्रास ।
मुए नीच तेँ मीच बिनु, जे इनके बिस्वास ॥

शब्दार्थ—मार=मारते हैं। खोज लै=पता लगा कर। सौंह करि=सौगंद खाकर। करि=षडयन्त्र रचकर, साजिश करके। मीच-बिनु=बिना मौत, असामयिक मौत।

पापी पाँवर

(४०७)

परद्रोही परदार-रत, परधन पर-अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरे मनुजाद॥

शब्दार्थ—पर-दार-रत=दूसरे की स्त्री से खोटा काम करने-वाले। पर-अपवाद=दूसरे की निन्दा करनेवाले। मनुजाद=मनुष्य भक्षी अर्थात् राक्षस।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में निदर्शनालङ्कार है।

पापी की परख

(४०८)

बचन बेष क्यों जानिये, मन मलीन नर नारि।
सूपनखा मृग पूतना, दसमुख प्रमुख बिचारि॥

शब्दार्थ—मृग=(कपट मृग) मारीच। प्रमुख=आदि, प्रभृति।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे अर्थान्तरन्यास अलङ्कारहै।

नोट—(१) शूर्पनखा जब श्रीरामजी के पास गयी थी, तब अपना बड़ा सुन्दर रूप बनाया था।

(२) मारीच ने काञ्चन मृग का रूप धारण कर, श्रीरामजी को धोखा दिया था।

(३) राक्षसी पूतना सुन्दरी स्त्री बन तथा अपने स्तनों में काल-कूट विष पोत, बालक श्रीकृष्ण को मार डालने के लिये गोकुल में गयी थी।

(४) सीता हरण के समय सीता को धोखा देने के लिये, रावण ने साधु वेश धारण किया था।

सुमति

(४०९)

हँसनि मिलनि बोलनि मधुर, कटु करतव मन माँह।
छुवत जो सकुचै सुमति सो, तुलसी तिन्हकी छाँह॥

शब्दार्थ—कटु=कड़वा, खोटा, बुरा। करतव=करतूत।

शठ-परिचय

(४१०)

कपट सार-सूची सहस, बाँधि बचन-परवास।
किय दुराउ चह चातुरी, सो सठ तुलसीदास॥

शब्दार्थ—सार-सूची=लोहे की सुई। परवास*=प्रवास, अच्छा वस्त्र। दुराउ=छिपाव।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

* प्र=उत्कृष्ट। वास=वस्त्र।

अन्तर्यामी को धोखा

(४११)

बचन बिचार अचार तन, मन करतब छल छूति ।
तुलसी क्यों सुख पाइये, अन्तर्जामिहिं धूति ॥

शब्दार्थ—छल छूति=छल का स्पर्श । क्यों=कैसे ? अन्तर्जामिहिँ=अन्तर्यामी को । धूति=छलना, ठगना ।

'सिंह का स्वाँग'

(४१२)

सारदूल को स्वाँग कर, कूकर की करतूति ।
तुलसी तापर चाहिये, कीरति बिजय बिभूति ।

शब्दार्थ—सारदूल=शार्दूल, सिंह । स्वाग करना=झूठा वेश बनाना । कूकर=कुत्ता । करतूति=करतब । तापर=तिस पर भी । बिभूति=ऐश्वर्य ।

सुखपाने की व्यर्थ आशा

(४१३)

बड़े पाप बाढ़े किये, छोटे किये लजात ।
तुलसी तापर सुख चहत, बिधि सों बहुत रिसात ॥

शब्दार्थ—पाइ=ऐश्वर्य प्राप्त करके। बिधि=विधाता रिसात=क्रुद्ध होते हैं।

विवेकहीन कर्ता

(४१४)

देश-काल-करता-करम, बचन-बिचार-बिहीन।
ते सुर-तरु-तर दारिदी, सुर-सरि-तीर मलीन॥

शब्दार्थ—सुर-तरु-तर=कल्प वृक्ष के नीचे। दारिदी=दरिद्री। सुरसरि=गङ्गा जी। मलीन=मैला कुचैला।

दुस्साहस का फल

(४१५)

साहस ही कै कोपबस, किये कठिन परिपाक।
सठ सङ्कट-भाजन भये, हठि कुजाति कपि काक॥

शब्दार्थ—कै=अथवा। कोपबस=क्रोधवश। परिपाक=बुरा फल देनेवाला कर्म। कपि=बालि। काक=जयन्त।

कथा-प्रसङ्ग—(१) वानरराज बालि किष्किन्धापुरी का राजा था। एक बार कारण विशेषवश उसकी और उसके छोटे भाई सुग्रीव से शत्रुता हो गयी। उसने अपने छोटे भाई की स्त्री को अपने रनवास में डाल लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि, वह श्रीरामजी के हाथ से मारा गया।

(७) जयन्त काक—देवराज इन्द्र के पुत्र का नाम जयन्त था। वह श्रीरामजी का बल जाँचने के लिये कौवा बनकर सीता जी के निकट गया और उस दुस्साहसी ने सीताजी के शरीर में चोंच व पंजे मार उन्हें घायल किया। उसका कपट श्रीरामजी से छिपा न रह सका। अतः उसका वध करने को श्रीराम जी ने एक बाण छोड़ा। जयन्त भयभीत हो भागा और प्राण बचाने को विश्व ब्रह्माण्ड में घूमा फिरा, किन्तु उसे कोई भी रक्षक न मिला। अन्त में वह व्याकुल और लज्जित हो श्रीराम जी के शरण में आया। तब कहीं उसके प्राण बच पाये, पर इस दुष्ट कर्म की यादगार को स्थायी बनाने के लिये उसे अपनी एक आँख से हाथ धोना पड़ा।

राजनीति

(४१६)

राज करत बिनु काज ही, करैं कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकन्ध ज्यों, जइ हैं सहित समाज॥

शब्दार्थ—बिनु काज ही=अकारण, नाहक। कुचाल=चालबाजी। कुसाज=साजिश। दसकन्धर=रावण। जइ हैं=नाश हो जायँगे। समाज सहित=परिवार के साथ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

नोट—सीता-हरण के कारण, नाती पोतों सहित रावण कैसे मारा गया—यह सब जानते ही हैं।

(४१७)

राज करत बिनु काज ही, ठटहिँ जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरराज ज्यों, जइ हैं बारहबाट॥

शब्दार्थ—ठटहिँ=बनाते हैं, साजते हैं। कूर=क्रूर, नीच। कुठाट=साजिश। कुरराज=दुर्योधन। बारहबाट=सत्यानाश होने के बारह रास्ते।

नोट—नाश होने के बारहबाट ये हैं—

(१) मोह, (२) दैन्य, (३) भय। (४) ह्रास (५) हानि, (६) ग्लानि। (७) क्षुधा, (८) तृषा, (९) मृत्यु (१०) क्षोभ, (११) व्यथा, (१२) अपकीर्ति।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

(४१८)

सभा सुजोधन की सकुनि, सुमति सराहन जोग।
द्रोन बिदुर भीषम हरिहिँ, कहैं प्रपञ्ची लोग॥

शब्दार्थ—सुजोधन=दुर्योधन। सुमति=बुद्धिमान।

नोट—इस दोहे में जिन पुरुषों का नामोल्लेख हुआ है, उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

(१) शकुनि—यह दुर्योधन का मामा था और गान्धार देश का राजा था। स्वभाव इसका बड़ा दुष्ट और कपटपूर्ण था। अत यह दुर्योधन को सर्वत्र दुष्ट परामर्श दिया करता था।

(२) द्रोणाचार्य—यह कौरवों और पाण्डवों दोनों के गुरु थे और उनको सामयिक शिक्षा दिया करते थे। ये समरविद्या में अद्वितीय थे और धनुर्वेद के प्रधान आचार्य थे। ये बड़े सीधे ब्राह्मण थे।

(३) विदुर—महाराज विचित्रवीर्य के दासीपुत्र थे। यह पाण्डवों और कौरवों के चचा लगते थे। यह बड़े नीतिज्ञ और भगवद्भक्त थे।

(४) भीष्म—कौरवों और पाण्डवों के नाते में बाबा लगते थे, ये बड़े शूरवीर, धर्मात्मा एवं न्यायप्रिय तथा दृढ़प्रतिज्ञ थे। इन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था। अतः इनमें अपूर्व शक्ति पैदा हो गयी थी।

(५) श्रीकृष्ण—भगवान् के पूर्ण कलावतार थे। अर्जुन के यह साले और अभिमन्यु के मामा थे। इन्होंने आरम्भ में महाभारत रोकने का पूर्ण प्रयत्न किया था, किन्तु भावीवश वह न रुक सका। शकुनि और कर्ण की बातों के सामने दुर्योधन ने इनकी एक भी बात न मानी।

(४१९)

पाण्डु-सुवन की सदसि ते, नीको रिपु-हित जानि।
हरिहर सम सब मानियत, मोह ज्ञान की बानि॥

शब्दार्थ—पाण्डु-सुवन=पाण्डव। सदसि=सभा। रिपुहित जानि=वैरी की भलाई जानकर। हरिहर सम=विष्णु और शिव के समान। बानि=आदत, स्वभाव।

अभाग्य का चिन्ह

(४२०)

हित पर बढ़ै विरोध जब, अनहित पर अनुराग।
राम-विमुख विधि वाम गति, सगुन अघाय अभाग॥

शब्दार्थ—अनहित=शत्रु। अघाय=जी भरकर। अभाग=अभाग्य।

'हित-हानि'

(४२१)

सहज सुहृद-गुरु-स्वामि-सिख, जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि॥

शब्दार्थ—सिख=शिक्षा। अघाइ=जी भरकर। उर=हृदय में। अवसि=अवश्य।

हिजड़ों का साहस

(४२२)

भरुहाए नट भाँट के, चपरि चढ़े संग्राम।
कै वै भाजे आइ हैं, कै बाँधे परिनाम॥

शब्दार्थ—भरुहाये=बढ़ावा देने पर। चपरि=सहसा। चढ़े सग्राम=युद्ध में जाना। कै=या तो। भाजे आइ हैं=भाग आवेंगे। परिनाम=नतीजा, फल।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे विकल्प अलङ्कार है।

'लोक-रीति'

(४२३)

लोक-रीति फूटो सहैं, आँजी सहै न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहै, सो आँधरो न होइ॥

शब्दार्थ—फूटो सहैं=आँख फूटने की पीर को सहना। आँजी सहना=अंजन लगाने की पीड़ा सहना। आँधरो=अन्धा।

किसी को मारो मत

(४२४)

भागे भल आड़ेहु भलो, भलो न घाले घाउ।
तुलसी सब के सीस पर, रखवारो रघुराउ॥

शब्दार्थ—भागे=भग जाना। आँड़ेहु=अड़ना, रोकना। घाले घाउ=चोट करना, वार करना।

दोहार्थ—यदि कोई अपने ऊपर आक्रमण करे तो भाग कर अथवा वार को रोक कर अपनी रक्षा करना अच्छा है, किन्तु वार करने वाले पर चोट करना अच्छा नहीं। क्योंकि सब के ऊपर रक्षा करनेवाले श्रीरामजी तो हैं ही हैं।

नोट—तुलसीदासजी का यह सिद्धान्त उन जैसे संसारत्यागी महात्माओं ही के लिये उपयुक्त है न कि गृहस्थों के लिये। उनके लिये तो "कण्टकेनैव कण्टकम्" नीति ही आचरणीय है।

सुमति विचारहिँ परिहरहिँ, दल-सुमनहुँ संग्राम।
सकुल गये तनु बिनु भये, साखी जादौ-काम॥

शब्दार्थ—सकुल=कुल सहित। गये=नाश हो गये। साखी=गवाह। जादौ=यादव, यदुवंशी। काम=कामदेव।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में यथासंख्य अलङ्कार है।

कथा-प्रसङ्ग—(१) प्रभास क्षेत्र में मदिरा के नशे में चूर यादवों में बात ही बात में परस्पर लड़ाई होने लगी थी। ऋषि के शाप से कमलपत्र ही तलवार बन गये और छप्पन करोड़ यादव वंश नष्ट हो गया।

(२) कामदेव ने ध्यान भङ्ग करने को ध्यानमग्न शिवजी पर पुष्पों के बने बाण चलाये थे। इससे उनका ध्यान टूटा और उन्होंने देखा कि आम के पेड़ की डाली पर बैठा कामदेव उनके ऊपर अविरल पुष्प-बाणों की वर्षा कर रहा है। यह देख, शिवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया। उस नेत्र से निकली आग से कामदेव वहीं का वहीं भस्म हो गया। कामदेव की पत्नी रति ने शिवजी से प्रार्थना की। आशुतोष शिवजी झट प्रसन्न हो गये और रति को वर दिया कि तेरा पति भस्म तो हो गया है, तो भी वह बिना शरीर ही के जीवित रहकर समस्त प्राणियों के शरीरों में व्याप्त रहेगा। तभी से कामदेव को अनङ्ग कहते हैं।

झगड़े का फल

(४२६)

कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगत अगिनि लघु नीचगृह, जरत धनिक धनधाम॥

शब्दार्थ—कलह=आपस की लड़ाई भिड़ाई। अगिनि=अग्नि। लघु=थोड़ा। नीच-गृह=गरीबों की झोपड़ी। धाम=मकान।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे दृष्टान्तालङ्कार है।

क्षमा का माहात्म्य

(४२७)

छमा रोष के दोष-गुन, सुनि मनु! मानहिँ सीख।
अविचल श्रीपति हरि भये, भूसुर लहै न भीख॥

शब्दार्थ—रोष=क्रोध। मनु=मन। अविचल=चिरस्थायी। श्रीपति=लक्ष्मीपति, विष्णु। भूसुर=ब्राह्मण। 'भूसुर' यहाँ ऋषिभृगु के लिये आया है।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे क्रमालङ्कार है।

कथा-प्रसङ्ग—ब्रह्मा, विष्णु और शिव में कौन सब से बड़ा है—इस प्रश्न को ले, एक बार कुछ ऋषियों में वादविवाद खड़ा हुआ। इस प्रश्न को हल करने के लिये सब ने भृगु ऋषि को चुना। भृगुजी ने अपना कार्य आरम्भ किया। सर्वप्रथम वे ब्रह्माजी की सभा में गये और जान बूझकर ब्रह्माजी को प्रणाम किये बिना ही सभा में जा बैठे। उनके इस

अशिष्टोचित व्यवहार से ब्रह्माजी बड़े कुपित हुए और क्रोध से अधीर हो वे उनको मारने के लिये उठे। तब तो भृगुजी वहाँ से झट नौ दो ग्यारह हो गये। स्मरण रहे भृगुजी नाते में ब्रह्माजी के पुत्र थे। भृगुजी वहाँ से भागकर अपने भाई शिवजी के यहाँ पहुँचे। शिवजी ने जब देखा कि उनके भाई आ रहे हैं, तब वे प्रसन्न हो उनको लेने के लिये आगे बढ़े, किन्तु भृगुजी ने उन्हें श्मशानगामी बता स्पर्श करने के अयोग्य बतला दिया और उनको छुआ नहीं। इस बात पर शिवजी बहुत बिगड़े और त्रिशूल उठा भृगुजी को मार डालने के लिये उनकी ओर झपटे। भृगुजी वहाँ से भी भागे और अन्त में वैकुण्ठ में पहुँचे। उस समय भगवान लक्ष्मी सहित पड़े हुए सो रहे थे। भृगु ने सोते ही उनकी छाती में तान कर एक लात मारी। लात लगते ही विष्णु भगवान की नींद टूटी और वे उठ खड़े हुए और अपने सामने भृगु को खड़ा देख, उनको प्रणाम किया और जिस पैर से उन्होंने लात मारी थी, उस पैर को पकड़ दबाने लगे। यह देख भृगुजी आश्चर्य-चकित हो गये। अन्त में सम्हल कर भृगुजी ने पूछा—भगवन्! मैंने तो आपकी छाती में लात मारी और आप क्रोध न कर, उलटा मेरा पैर मसल रहे हैं सो क्यों?

इसके उत्तर में दयालु भगवान् ने भृगुजी से कहा—महर्षि! मेरी छाती वज्र से भी बढ़कर कठोर है। इस पर लात मारने से आपके पैर में कहीं चोट न लग गयी हो—मुझे इसीका डर है।

भगवान् विष्णु की ऐसी अलौकिक क्षमा देख, भृगुजी ने उनको प्रणाम किया और लौटकर महर्षियों को अपनी जाँच का यह निर्णय सुनाया कि ब्रह्माजी रजोगुणी, शिवजी तमोगुणी और विष्णु सतोगुणी हैं। अतः विष्णु सतोगुणी होने के कारण सर्वप्रधान हैं। उसी समय से भगवान् विष्णु ही सर्वप्रधान माने जाते हैं।

(४२८)

कौरव पाण्डव जानिये, क्रोध-क्षमा के सीम।

पाँचहि मारि न सौ सके, सयो संहारे भीम॥

शब्दार्थ—सीम=सीमा, मर्यादा। सयो=सौ कौरवों को। (धृतराष्ट्र के दुर्योधनादि सौ पुत्र थे और वे कौरव कहलाते थे।) संहारे=मारडाले।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में यथासख्य अलङ्कार है।

'रोटी की मार'

(४२९)

बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारु।

जीति सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारु॥

शब्दार्थ—मोटे बोल न मारिये=किसी को गाली न देनी चाहिये। मोटी रोटी मारु=भारी जुर्माना भले ही कर दो। अथवा खिला पिलाकर या रोजगार लगवाकर चाँदी की मार से, अपने वश में कर लो। निहारु=देखो, विचारो।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे भङ्गक्रमालङ्कार है।

युद्ध पर विचार

(४३०)

जो परि पाँय मनाइये, तासोँ रूठि विचारि।

तुलसी तहाँ न जीतिये, जहँ जीते हूँ हारि॥

शब्दार्थ—रूठि=रूठना, अप्रसन्न होना। विचारि=सोच।

(४३१)

जूझे ते भल बूझिबो, भली जीति तें हारि।
डहके ते डहकाइबो, भलो जो करिय बिचारि॥

शब्दार्थ—जूझे ते=लड़ने से। बूझिबो=समझौता। डहकना=ठगना।

(४३२)

जा रिपु सों हारे हँसी, जिते पाप परितापु।
तासों रारि निवारिये, समय सँभारिय आपु॥

शब्दार्थ—परितापु=पछतावा। तासों= उससे। रारि=कलह, लड़ाई। निवारिये=रोकिये।

(४३३)

जो मधु मरै न मारिये, माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ॥

शब्दार्थ—मधु=शहद। माहुर=ज़हर। काउ=कोई।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में प्रमाणालङ्कार है।

कोमल वाणी या मधुर वचन

(४३४)

बैर-मूल-हर हित-वचन, प्रेममूल उपकार।
दो 'हा' शुभ सन्दोह सो, तुलसी किये विचार॥

शब्दार्थ—वैर-मूल-हर=वैर की जड़ काटनेवाला दो 'हा' दो बार हा अर्थात् हाहा खाना अर्थात् विनय करना। सुभ-सदोह=कल्याण का भाण्डार।

(४३५)

रोष न रसना खोलिये, बरु खोलिये तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलिये बचन बिचारि॥

शब्दार्थ—रसना न खोलिये=जीभ न खोलिये, कर्णकटु वचन न कहिये, वाग् बाण न छोड़िये। बरु खोलिये तरवारि=म्यान से तलवार भले ही निकाल लीजिये।

(४३६)

मधुर बचन कटु बोलिबो, बिनु स्रम भाग अभाग।
कुहू-कुहू कल-कण्ठ-रव, काँ काँ कररत काग॥

शब्दार्थ—कलकण्ठ=मधुर कण्ठ से बोलनेवाला कोकिल पक्षी। रव=शब्द। काँ काँ=कौवे की बोली। कररत=करकराता है।

(४३७)

पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै ढेर।
समय बिचारे बोलिये, समुझि कुफेर-सुफेर॥

शब्दार्थ—कहत न लागै ढेर=कहने से धन का ढेर नहीं लग जाता। कुफेर-सुफेर=समय-कुसमय।

विचित्र कवच

(४३८)

छिद्यो न तरुनि-कटाच्छ-सर, कोउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिनकी देह को, जगत कवच करि लेहु॥

शब्दार्थ—छिद्यो न तरुनि-कटाच्छ-सर=युवती के कटाक्ष रूपी बाण से नहीं छिदा। कवच=लड़ते समय पहनने की वर्दी विशेष, बख्तर।

'कायर' का प्रलाप

(४३९)

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाय रिपु, कायर करहिं प्रलाप॥

शब्दार्थ—विद्यमान=मौजूद, प्रस्तुत। प्रलाप=बकवाद।

'अभिमान' का फल

(४४०)

वचन कहे अभिमान के, पारथ पेखत सेतु।
प्रभुतिय लूटत नीच भर, जय न मीचु तेहि हेतु॥

शब्दार्थ—पारथ=अर्जुन। पेखत=देखकर। सेतु=पुल। प्रभुतिय=श्रीकृष्णचन्द्रजी की स्त्रियाँ। भर=जंगली लोगों की एक जाति विशेष, जो काठियावाड़ प्रान्त में पाये जाते हैं।

कथा-प्रसङ्ग—प्रवाद है कि, एक बार अर्जुन ने अभिमान पूर्वक हनुमानजी से कहा था कि, श्रीरामजी की सेना में जान पड़ता है कोई वीर नहीं था, इसीसे उन्हें समुद्र के ऊपर पुल बाँधने की जरूरत पड़ी थी। यदि मैं उस समय होता तो बाणों से समुद्र पाट देता। इस बात को ले दोनों में देर तक वादविवाद होता रहा। अन्त में यह तै पाया कि, अर्जुन के कथन की परीक्षा कर ली जाय। दोनों समुद्र पर पहुँचे। अर्जुन ने बाणों से पुल बाँधकर दिखला दिया। तब हनुमानजी ने पूँछा—क्या यह तुम्हारा पुल मेरा बोझ सम्हाल लेगा? इसके उत्तर में अर्जुन ने अभिमान पूर्वक कहा—अकेले तुम्हीं क्यों—तुम्हारे जैसे सैकड़ों हजारों लोग इस पर हो कर आ जा सकते हैं। यह सुन, हनुमानजी क्षणमात्र के लिये उत्तराखण्ड की ओर चले गये और वहाँ से अपना भूधराकार शरीर बना, अर्जुन के सामने आ खड़े हुए और बोले सावधान, अपने पुल को सँभालो। उनका वह विशाल रूप देख अर्जुन की बुद्धि चकरा गयी और भयभीत हो वे हे कृष्ण! हे कृष्ण! कहने लगे। उधर हनुमानजी ने ज्यों ही पुल पर पैर रखा, त्यों ही पुल चरचराया और समुद्र का जल लाल हो गया। यह देख हनुमानजी को आश्चर्य हुआ और ज्यों ही वे नीचे को झाँके, त्यों ही उन्होंने देखा कि भगवान् स्वयं कच्छप का रूप धारण कर, पुल के नीचे बैठे हैं। उनके मुख से रक्त निकल रहा है। इस पर हनुमानजी कुलाँच मार पुल के इस पार आ गये और भगवान् की स्तुति करने लगे। भगवान् प्रकट हुए और उन दोनों में मेल मिलाप करवा दिया और कहा, मैंने तुम दोनों के प्रण की रक्षा की। अब आज से तुम दोनों मित्र बन कर रहा करो।

(२) श्रीकृष्ण के गोलोकवासी होने पर, जब द्वारका से अर्जुन श्रीकृष्ण की स्त्रियों को हस्तिनापुर ला रहे थे, तब रास्ते में लुटेरों ने उनको लूटा। उस समय अर्जुन से कुछ भी करते धरते न बन पड़ा।

गाण्डीव धनुष ने भी उस समय कुछ काम न दिया। तब वे चेते और समझे कि उनमें जो कुछ शौर्य पराक्रम था वह सब श्रीकृष्ण का प्रसाद था।

(४४१)

राम लषन विजयी भये, बनहु गरीब-निवाज।
मुखर बालि-रावन गये, घर ही सहित समाज॥

शब्दार्थ—बनहुँ गरीब-निवाज=वन में भी दीनों पर दया करनेवाले। मुखर=बकवादी। गये=नष्ट हो गये।

अच्छी युक्ति और बुरी बुद्धि

(४४२)

खग-मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल।
कुमति बालि-दसकण्ठ घर, सुहृद बन्धु कियो काल

शब्दार्थ—नयपाल=नीतिपालक। कुमति=दुर्बुद्धि। काल=मृत्यु।

(४४३)

लखै अघानो भूख ज्यों, लखै जीति में हारि
तुलसी सुमति सराहिये, मग पग धरै बिचारि।

शब्दार्थ—लखै=देखता है, समझता है। अघानो=तृप्त। मग रास्ता।

समय की प्रशंसा

([illegible])

लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक।
सदा विचारहिं चारुमति, सुदिन कुदिन दिन दूक॥

शब्दार्थ—असमय के सखा=विपद् काल के मित्र। विवेक=सदसत् का ज्ञान। साहित=साहित्य।

(४४८)

समरथ कोउ न राम सों, तीय हरन अपराधु।
समयहि साधे काज सब, समय सराहहिं साधु॥

शब्दार्थ—समरथ=सामर्थ्यवान। तीय हरन=नारी-हरण। सब काज साधे=समस्त कार्य सिद्ध किये।

(४४९)

तुलसी तीरहु के चले, समय पाइबी थाह।
धाइ न जाइ थहाइबी, सर सरिता अवगाह॥

शब्दार्थ—तीरहु के चले=तट पर चलने पर भी। सर=तालाब। सरिता=नदी। अवगाह=गहराई।

(४५०)

तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥

शब्दार्थ—जसि=जैसी। भवितव्यता=होनी। आपु=स्वय। ताहि पै=उसके पास।

परलोक का मार्ग

(४५१)

कै जूझिबो कै बूझिबो, दान कि काय-कलेस।
चारि चारु परलोक-पथ, जथा जोग उपदेस॥

शब्दार्थ—जूझिबो=लड़ाई में लड़ मरना। बूझिबो=समझना (भगवान् का रूप)। काय-कलेस=शारीरिक कष्ट सहन करना, तप करना।

(४५२)

पात पात को सींचिबो, न करु सरग-तरु हेत।
कुटिल कटुक फर फरैगो, तुलसी करत अचेत॥

शब्दार्थ—पात पात को सींचिबो=प्रत्येक पत्ते का सींचना अर्थात् प्रत्येक देवता का पूजन। कटुक=कड़वा। फर=फल।

विश्वास की महिमा

(४५३)

गठिबँध तेँ परतीति बड़ि, जेहि सब को सब काज।
कहब थोर समझब बहुत, गाड़े बढ़त अनाज॥

शब्दार्थ—परतीति=विश्वास। गाड़े=गाड़ने पर, बोने पर। गठिबँध=ग्रन्थ बन्धन, विवाह के समय दूल्हा दुल्हिन के वस्त्रों में गाँठ लगायी जाती है, वही गठबँधन कहलाता है।

(४५४)

अपनो ऐपन निजहथा, तिय पूजहिं निज भीति।
फलै सकल मनकामना, तुलसी प्रीति-प्रतीति॥

शब्दार्थ—ऐपन=चाँवल और हल्दी पीसकर एक प्रकार का रंग बनाया जाता है, जिससे मङ्गल कार्य में कन्याएँ और सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने हाथों के थापे या पँजे की छाप लगाती हैं। निजहथा=अपने हाथ की छाप। भीति=दीवार।

श्रद्धा

(४५५)

बरषत करषत आपु जल, हरषत अरघनि भानु।
तुलसी चाहत साधु सुर, सब सनेह सनमानु॥

शब्दार्थ—करषत=सोखना, खींचना। अरघनि=अर्घ्य, जल की अञ्जलि, जो किसी देवता के सत्कार के लिये दी जाती है।

ज्योतिष-चर्चा

(४५६)

स्रुति-गुन कर-गुन पु-जुग-मृग, हय रेवती सखाउ।
देहिं लेहिं धन धरनि धरु, गयेहुँ न जाइहिं काउ॥

शब्दार्थ—स्रुतिगुन=श्रवण से तीन नक्षत्र यथा श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा। कर-गुन=हस्त नक्षत्र से तीन यथा हस्त, चित्रा और स्वाति।

पु-जुग=दो पु अर्थात् वे दोनों नक्षत्र जिनका आदि अक्षर पु है यथा-पुनर्वसु, पुष्य। मृग=मृगशिरा नक्षत्र। हय=अश्विनी नक्षत्र। सखा=अनुराधा नक्षत्र। देहिं-लेहिं=लेन देन। धरनि=जमीन। धरु=धरोहर।

(४५७)

ऊ-गुन पू-गुन वि अज कृ म, आ भ अ मू गुनु साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो, धन फिर चढ़ै न हाथ॥

शब्दार्थ—ऊ-गुन=वे तीनों नक्षत्र जो ऊ से आरम्भ होते हैं जैसे—उत्तर फाल्गुण, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद। पू-गुन='पू' अक्षर से आरम्भ होनेवाले तीन नक्षत्र यथा पूर्वफाल्गुण, पूर्वाषाढ़ और पूर्वभाद्रपद। वि=विशाखा नक्षत्र। अज=रोहिणी नक्षत्र। कृ=कृत्तिका नक्षत्र। म=मघा नक्षत्र। आ=आर्द्रा नक्षत्र। भ=भरणी नक्षत्र। अ=अश्लेषा नक्षत्र। मू=मूल नक्षत्र। गुनु=विचार लो। हरो=चोरी गया हुआ। धरो=धरा हुआ, धरोहर। गडो=जमीन में गड़ा हुआ। दियो=उधार दिया हुआ। फिर चढ़े न हाथ=फिर नहीं मिलता।

(४५८)

रवि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक वार।
तिथि सब काज-नसावनी, होइ कुजोग विचार॥

शब्दार्थ—रवि=एकादशी। हर=द्वादशी। दिसि=दसमी। गुन=तृतीया। रस=षष्ठी। नयन=द्वितीया। मुनि=सप्तमी। प्रथमादिक वार=रवि, सोम तथा मङ्गलादि वार। काज नसावनी=काम नष्ट करनेवाली।

दोहार्थ—यदि रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मङ्गलवार को दशमी, बुधवार को तृतीया, गुरुवार को षष्ठी, शुक्रवार को द्वितीया और शनिवार को सप्तमी हो, तो ये बड़े कुयोग समझे जाते हैं।

(४५९)

ससि सर नव दुइ छ दस गुन, मुनि फल बसु हरि भानु।
मेषादिक क्रम तें गनहि, घात चन्द्र जिय जानु॥

शब्दार्थ—ससि=शशि, एक। सर=शर, पाँच। गुन=तीन। मुनि=सात। फल=चार। बसु=आठ। हर=ग्यारह। भानु=बारह। घात=मारक, मारनेवाला।

दोहार्थ—जन्मकुण्डली में निम्न चन्द्रमा घातक अर्थात् घात करने वाले होते हैं—

मेष के पहले वृष के पाँचवें, मिथुन के नवें, कर्क के दूसरे, सिंह के छठवें, कन्या के दसवें, तुला के तीसरे, वृश्चिक के सातवें, धन के चौथे, मकर के आठवें, कुम्भ के ग्यारहवें, और मीन के बारहवें।

अच्छे-शकुन

(४६०)

नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाप।
दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहिं मन-अभिलाप॥

शब्दार्थ—नकुल=नेवला। सुदरसन=मछली। दरसनी=आईना, दर्पण। छेमकरी=चील्ह। चक=चकवाक। चाप=नीलकण्ठ।

दोहार्थ—यात्रा करते समय नेवला, मछली, दर्पण, चील्ह, चकवा, और नीलकण्ठ दसों दिशाओं में से कहीं भी देख पड़ें, तो समझें यात्रा सफल होगी, मनोभिलाषा पूर्ण होगी।

(४६१)

सुधा साधु सुरतरु सुमन, सुफल सुहावनि बात।
तुलसी सीतापति भगति, सगुन सुमङ्गल सात॥

दोहार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि, जल, साधु, कल्पवृक्ष, फूल, सुन्दर फल, मधुर वार्ता और श्रीरामजी की भक्ति—ये सातों मङ्गल करनेवाले शकुन हैं।

(४६२)

भरत शत्रुसूदन लषन, सहित सुमिरि रघुनाथ।
करहु काज सुभ साज सब, मिलिहि सुमङ्गल साथ॥

दोहार्थ—भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मणजी के सहित सीताराम का स्मरण कर तथा मङ्गल सामग्री एकत्र कर, कार्यारम्भ करने से सब प्रकार से कल्याण होता है।

(४६३)

राम लषन कौसिक सहित, सुमिरहु करहु पयान।
लच्छि लाभ लै जगत जसु, मङ्गल सगुन प्रमान॥

शब्दार्थ—कौशिक=विश्वामित्र। पयान=प्रस्थान। लच्छि-लाभ=लक्ष्मी अर्थात् धन की प्राप्ति। जसु=यश, कीर्ति।

दोहार्थ—यात्रा करते समय विश्वामित्र सहित श्रीराम और लक्ष्मण का स्मरण करने से धन मिलता है और जगत में यश फैलता है। क्योंकि यह प्रामाणिक और मङ्गलदायक शकुन है।

वेद-माहात्म्य

(४६४)

अतुलित महिमा वेद की, तुलसी किये विचार।
जो निन्दत निन्दित भयो, बिदित बुद्ध अवतार॥

शब्दार्थ—अतुलित=जिसकी तुलना न की जा सके। निन्दित=निन्दा करने से। विदित=प्रकट।

(४६५)

बुध-किसान सर-बेद निज, मते खेत सब सींच।
तुलसी कृषि लखि जानिबो, उत्तम मध्यम नीच॥

शब्दार्थ—बुध=पण्डित। किसान=कृषक। सर-वेद=वेद रूपी सरोवर। निजमते खेत सब सींच=अपने अपने मत रूपी खेतों को सब लोग सींचते हैं। कृषि=खेती।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में साङ्गरूपक अलङ्कार है।

धर्म की रक्षा

(४६६)

सहि कुबोल साँसति सकल, अँगइ अनत अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गये सुजान॥

शब्दार्थ—कुबोल=कड़ी बातें। साँसति=कष्ट। अँगइ=स्वीकार करके। अनट=अनुचित। परिहरिय=छोड़िये। सुजान=चतुरजन।

हित-अनहित-विचार

(४६७)

अनहित-भय परहित किये, पर-अनहित हितहानि।
तुलसी चारु बिचार भल, करिय काज सुनि-जानि॥

शब्दार्थ—अनहित=बुराई। परहित=दूसरे की भलाई। चारु=सुन्दर। सुनि-जानि=ज्ञान सुन कर, समझ बूझ कर।

(४६८)

पुरुषारथ पूरब करम, परमेस्वर परधान।
तुलसी पैरत सरित ज्यों, सबहिं काज अनुमान॥

शब्दार्थ—पुरुषारथ=परिश्रम। पूरब-करम=पूर्व जन्म के कर्म, अर्थात् भाग्य। परधान=प्रधान, मुख्य। पैरत=तैरने के समय। सरित=नदी। ज्यों=वैसे ही।

(४६९)

चलब नीति मग रामपग, नेह निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिय सो बसन, जो न पखारे फीक॥

शब्दार्थ—चलब=चलना। निबाहब=निबाहना। पखारे=धोने से। फीक=बदरंग, फीका।

(४७०)

दो 'हा' चारु विचारु चलु, परिहरि वाद विवाद।
सुकृत सींव स्वारथ-अवधि, परमारथ मरजाद॥

शब्दार्थ—हाहा खाना, विनती करना, मिन्नत आरजू करना। वाद विवाद=तर्क वितर्क। सुकृत सींव=पुण्य की सीमा। मरजाद=मर्यादा, सीमा। परमारथ=परमार्थ, मोक्ष।

(४७१)

तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु सयान।
जो बिचारि व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान॥

शब्दार्थ—सुकृती=पुण्यवान। व्यवहरइ जग=संसार में व्यहार करता है। अनुमान=पहले ही से समझकर, पहले से अंदाजा लगाकर।

'जोग-छेम' विचार

(४७२)

जाय जोग जग छेम बिनु, तुलसी के हित राखि।
बिनुऽपराध भृगुपति नहुष, वेनु वृकासुर साखि॥

शब्दार्थ—जाय=वृथा जाता है। जोग=साँसारिक ऐश्वर्यादि की प्राप्ति। छेम=क्षेम, प्राप्त वस्तु की रक्षा। राखि=खाक। साखी=गवाह। वृकासुर=भस्मासुर।

कथाप्रसङ्ग—(१) भृगुपति=परशुराम। यह जमदग्नि ऋषि के पुत्र थे। यह धनुर्विद्या में परमदक्ष थे। इन्होंने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियहीन किया था। अन्त में श्रीरामचन्द्र जी के साथ उलझने पर, उन्हें मात होना पड़ा।

(२) नहुष—यह चन्द्रवंशी राजा थे। इन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञ करके इन्द्रासन प्राप्त किया था, किन्तु ये बहुत दिनों इन्द्रासन पर न ठहर सके।

(३) राजा वेणु—यह एक सूर्यवंशी राजा था और बड़ा प्रतापी था। किन्तु राजसिंहासन पर बैठ इसका दिमाग बहुत ऊँचा चढ़ गया था। इसने दुराचार का प्रचार करने ही में अपने जन्म की सफलता समझ ली थी। अत. ऋषियों ने इसको मार डाला था।

(४) वृकासुर—यह महादेव का बड़ा भक्त था। ताण्डव नृत्य कर इसने महादेव को प्रसन्न किया था। प्रसन्न हो शिव ने इसे यह वर दिया था कि, जिसके सिर पर यह हाथ रखेगा वह भस्म हो जायगा। यह वर पाकर इस अदूरदर्शी ने उक्त वर को शिव जी पर ही आजमाना चाहा। तब शिव जी भागे और विष्णु के पास पहुँचे। विष्णु ने बड़ी युक्ति से काम लिया और यह असुर अपना हाथ अपने सिर पर रख, स्वयं भस्म हो गया। इसीसे इसका दूसरा नाम भस्मासुर पड़ा है।

(४८३)

बढ़ि प्रतीति गठिबन्ध तैं, बड़ो जोग तैं छेम।
बड़ो सुसेवक साइँ तैं, बड़ो नेम तैं प्रेम॥

शब्दार्थ—प्रतीति=विश्वास। साइँ=स्वामी। नेम=नियम। गठबन्ध=गठजोड़ा, ग्रन्थि-बन्धन।

संग्राह्य-अग्राह्य-विचार

(४७४)

सिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिय सिखावन साँच ।
सुनि समुझिय पुनि परिहरिय, पर-मनरञ्जन-पाँच ॥

(४७५)

शब्दार्थ—सखा=मित्र। सचिव=मन्त्री। सुतिय=सुन्दरी स्त्री। पर-मन-रञ्जन=शत्रु के मन को प्रसन्न करनेवाले।

नगर नारि भोजन सचिव, सेवक सखा अगार ।
सरस परिहरे रङ्गरस, निरस विषाद विकार ॥

शब्दार्थ—सखा=मित्र। अगार=घर। विषाद=दुःख। विकार=दोष।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में तुल्ययोगितालङ्कार है।

मन को दुःखप्रद

(४७६)

तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि ।
तीय तनय सेवक सखा, मन के कण्टक चारि ॥

शब्दार्थ—तूठहिं=सन्तुष्ट रहते हैं। निजरुचि=अपनी पसद का। रूठहिं=रूठ जाते हैं। तीय=स्त्री। मन के कण्टक=मन को दुःख देनेवाले।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में तुल्ययोगितालङ्कार है।

निरादर के पात्र

(४७७)

दीरघ रोगी दारिदी, कटु बच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ, होहिँ निरादर जोग॥

शब्दार्थ—दीरघ रोगी=बहुत दिनों का रोगी। दारिदी=दरिद्री। कटुवच=कड़ी बात कहनेवाले। लोलुप=लालची।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे तुल्ययोगितालङ्कार है।

दुःख के कारण पाँच

(४७८)

पाही खेती लगन बट, ऋन कुब्याज मग-खेत।
बैर बड़े सोँ आपने, किये पाँच दुख हेत॥

शब्दार्थ—पाही खेती=अपने गाँव में न कर दूसरे गाँव मे की हुई खेती, पाही खेती कहलाती है। लगन बट=राह चलते प्रीति करना। ऋन कुब्याज=अधिक सूद पर लिया हुआ ऋण। मग-खेत=रास्ते पर का खेत। दुःख हेत=दुःख के कारण।

पापात्मा से वैर

(४७९)

घाय लगे लोहा ललकि, खैँचि लेइ नइ नीचु।
समरथ पापी सोँ बयर, जानि बिसाही मीचु॥

शब्दार्थ—बयर=बैर। जानि बिसाही मीचु=जान बूझकर मौत खरीदना।

शोच्य कौन है ?

(४८०)

सोचिय गृही जो मोहवस, करै कर्मपथ-त्याग।
सोचिय जती प्रपञ्च-रत, बिगत बिवेक बिराग॥

शब्दार्थ—सोचिय=सोचने योग्य। गृही=गृहस्थ। मोहवस=अज्ञानवश। कर्मपथ त्याग=कर्मकाण्ड का त्याग या कर्ममार्ग का त्याग। जती=यति, संन्यासी। प्रपञ्च-रत=माया में फँसा हुआ। बिगत-बिबेक-बिराग=ज्ञान और वैराग्य से रहित।

स्वार्थान्धता

(४८१)

तुलसी स्वारथ सामुहो, परमारथ तनु पीठि।
अन्ध कहे दुख पाइ हैं, डिठियारो केहि डीठि !

शब्दार्थ—सामुहो=सम्मुख। डिठियारो=आँखोंवाला। डीठि=दृष्टि, नज़र।

आँखें रहते अंधा

(४८२)

बिनु आँखिन की पानही, पहिचानत लखि पाँय।
चारि-नयन के नारिनर, सूझत मीचु न माय॥

शब्दार्थ—पानही=जूते। चारिनयन=दो बाहर के, दो भीतर के, दो चर्मचक्षु, दो ज्ञानचक्षु। मीचु=मृत्यु। माय=माया।

मूर्खोपदेश

(४८३)

जौ पै मूढ़ उपदेस के, होते जोग जहान।
क्यों न सुयोधन बोध कै, आये स्याम सुजान॥

शब्दार्थ—जो पै=यदि। मूढ=मूर्ख। जहान=ससार। बोधके=समझा के। सुजोधन=दुर्योधन। स्याम=श्रीकृष्ण। सुजान=चतुर।

(४८४)

सोरठा

फूलै फरै न बेत, जदपि सुधा बरषहिँ जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलै बिरञ्चि सम॥

शब्दार्थ—बेत=बेतसलता। चेत=ज्ञान। विरञ्चि=ब्रह्मा।

(४८५)

दोहा

रीझि आपनी बूझि पर, खीझि बिचार-बिहीन।
ते उपदेस न मानहीं, मोह-महोदधि-मीन॥

शब्दार्थ—रीझि=प्रसन्नता। खीझि=क्रोध। महोदधि=समुद्र।

निज समझ

(४८६)

अनसमुझे अनसोचनो, अवसि समुझिये आपु।
तुलसी आपु न समुझिये, पल पल पर परितापु॥

शब्दार्थ—अनसमुझे=बिना समझे। अनसोचनो=बिना सोचे। पल पल पर=क्षण क्षण पर। परितापु=दुःख।

कुमति-शिरोमणि

(४८७)

कूप खनत मन्दिर जरत, आये धारि बबूर।
बवहिं नवहिं निज काज सिर, कुमति-सिरोमनि कूर॥

शब्दार्थ—मन्दिर=घर। धारि=सेना। आये धारि बबूर बवहिं=शत्रु की सेना के आजाने पर उसकी रोक के लिये बबूल बोते हैं। नवहिं=झुकाते हैं।

(४८८)

निडर ईस तेँ बीस कै, बीस बाहु सो होइ।
गयो गयो कहैं सुमति सब, भयो कुमति कह कोइ॥

शब्दार्थ—बीस कै=बीसो बिस्वे। बीस बाहु=रावण। गयो गयो=नष्ट हुआ (यह मुहावरा है)। भयो=है।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में लोकोक्ति अलङ्कार है।

(४८९)

जो सुनि-समुझि अनीतिरत, जागत रहै जु सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो, तुलसी उचित न होइ॥

शब्दार्थ—अनीतिरत=अन्यायी।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में क्रमालङ्कार है।

आशा जो सम्भव नहीं

(४९०)

बहुसुत बहुरुचि बहुबचन, बहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार॥

दोहार्थ—बहुत पुत्रोंवाले, बहुत सी कामनावाले, तरह तरह की बातें बनानेवाले और तरह तरह के आचरण और व्यवहार करनेवाले की भलाई की इच्छा करना बड़ी भारी मूर्खता है।

(४९१)

लोगनि भलो मनाव जो, भलो होन को आस।
करत गगन को गेंडुआ, सो सठ तुलसीदास॥

शब्दार्थ—करत गगन को गेंडुआ=आकाश का तकिया बनाता है अर्थात् असम्भव को सम्भव कर दिखलाता है। गेंडुआ=तकिया।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में प्रौढ़ोक्ति अलङ्कार है।

लोक-निन्दा

(४९२)

अपजस जोग कि जानकी, मनि चोरी की कान्ह ?
तुलसी लोग रिझाइबो, करिष कातिबो नान्ह ॥

शब्दार्थ—नान्ह=छोटा, महीन ।

कथाप्रसङ्ग—(१) जानकी को अयोध्यावासी एक धोबी ने यह अपयश लगाया था कि, वे रावण के घर में रहीं और तिस पर भी रघुनाथ जी ने उन्हें अपने घर में रखा ।

(२) सत्राजित द्वारकावासी एक यादव था । उसके पास स्यमन्तक नामक एक मणि थी । एक दिन उसका भाई उस मणि को धारण कर शिकार खेलने वन में गया । दैवात् वह एक सिंह द्वारा मारा गया । उस सिंह को जाम्बवान ने मार डाला और स्यमन्तक मणि अपने अधिकार में कर ली । उधर सत्राजित् ने यह अफवाह उड़ायी कि, कृष्ण का उस मणि पर दाँत था । अतः श्रीकृष्ण ने मेरे भाई को जंगल में मार, उससे मणि छीन ली है । इस कलङ्क को मेटने के लिये श्रीकृष्ण को जंगल में जा, उस मणि का पता लगाना पड़ा था और लगा भी लिया था ।

(४९३)

तुलसी जुपै गुमान को, होतो कछू उपाउ ।
तौ कि जानकिहि जानि जिय, परिहरते रघुराउ ? ॥

शब्दार्थ—गुमान=ख्याल, सन्देह । रघुराउ=श्रीरामचन्द्रजी ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में वक्रोक्ति अलङ्कार है ।

मधुकरी की बड़ाई

(४९४)

माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसार।
पाय प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि॥

शब्दार्थ—मधुकरी=भिक्षा। गोड़ पसारि=पैर फैलाकर। निश्चिन्तताई से। रारि=झगड़ा।

नोट—मधुकर नाम है भ्रमर का। जैसे भँवरा प्रत्येक फूल पर बैठ कर मधु सञ्चित करता है, वैसे ही घर घर घूम कर खाने मात्र को भोज्य पदार्थ एकत्र कर लेना, मधुकरी या मधूकरी भिक्षा कहलाती है।

अन्ध-परम्परा

(४९५)

तुलसी भेड़ी की धसनि, जड़-जनता-सनमान।
उपजत ही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान॥

शब्दार्थ—भेड़ी की धसनि=भेड़िया धसान, अन्ध-परम्परा। अपान=अपनपो, निजत्व।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में लोकोक्ति अलङ्कार है।

(४९६)

लही आँखि कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याय।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहराइच जाय॥

शब्दार्थ—लही=पाई। आन्धरे=अन्धा। बाँझ=बन्ध्या स्त्री। काया=शरीर।

नोट—संयुक्त प्रान्त में बहराइच नामक एक नगर है। यहा पर गाजीमिया की एक दरगाह है। यहा पर हज़ारों आदमी आते और दरगाह पर चद्दरें चढ़ाते हैं। प्रवाद है कि भारत के इतिहास में अत्याचारों के लिये बदनाम लुटेरे महमूद गजनवी का एक भांजा था। उसका नाम था सैयद्-सालार मसऊद। महमूद तो कन्नौज के आगे पूर्व की ओर बढ़ा नहीं, किन्तु उसका यह भांजा थोड़ी सी सेना लेकर आगे चढ़ और श्रावस्ती के नरपति सुहृद्देव के हाथ से लड़ाई में मारा गया। उसीकी यह दरगाह है। श्रावस्ती आजकल सेहत-मेहत के नाम से प्रसिद्ध है और बलरामपुर के निकट है।

स्वर्ग की नश्वरता

(४९७)

तुलसी निरभय होत नर, सुनियत सुरपुर जाइ।
सो गति देखियत अछत तनु, सुख सम्पति गति पाइ॥

शब्दार्थ—सुरपुर=स्वर्ग। अछततनु=शरीर रहते।

ऐश्वर्य के दोष

(४९८)

तुलसी तोरत तीरतरु, बकहित हंस बिडारि।
बिगत-नलिन-अलि मलिन जल, सुरसरिहू बढ़ियारि॥

शब्दार्थ—बिडारि=मारकर। विगत=रहित। नलिन=कमल। अलि=भँवरा। बढ़िभारि=बाढ़ आने पर, बढ जाने पर।

अवसर की महिमा

(४९९)

अधिकारी बस औसरा, भलेउ जानिबो मन्द।
सुधासदन बसु बारहें, चउथे चउथिउ चन्द॥

शब्दार्थ—औसर=अवसर। मन्द=बुरा। सुधासदन=अमृत-का घर। वसु=आठवाँ। चउथिउ=भादों की शुक्ल चतुर्थी भी।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है

दोहार्थ—समयानुसार अच्छे भी बुरे हो जाते हैं। जैसे चन्द्रमा अमृत का घर होने पर भी आठवाँ, बारहवाँ और चौथा तथा भाद्र शुक्ला चतुर्थी का हानिकारी हो जाता है।

परिचालक का प्रताप

(५००)

त्रिविध एक बिधि प्रभु अनुग, अवसर करहिँ कुठाट।
सूधे टेढ़े सम विषम, सब महँ बारह बाट॥

शब्दार्थ—अनुग=अनुयायी, सेवक। करहिँ कुठाट=बुराई करते हैं। सम विषम=समता में विषमता।

(५८१)

प्रभु तेँ प्रभु-गन दुखद लखि, प्रजहिं सँभारै राउ।
कर तेँ होत कृपान को, कठिन घोर घन-घाउ॥

शब्दार्थ—गन=नौकर चाकर। सँभारै=सँभाले। राउ=राजा। कृपान=कृपाण, तलवार। घाउ=घाव, चोट।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में यथासंख्य अलङ्कार है।

अफीम के अवगुण

(५८२)

ब्यालहु तेँ विकराल बड़, ब्याल-फेन जिय जानु।
वहि के खाये मरत है, वह खाये बिनु प्रानु॥

शब्दार्थ—ब्याल=सांप। विकराल=भयङ्कर। ब्यालफेन=अफीम।

कार्य की कठिनता

(५८३)

कारन ते कारज कठिन, होइ दोष नहिँ मोर।
कुलिस अस्थि तेँ उपलतेँ, लोह कराल कठोर॥

शब्दार्थ—कारण=वह जिससे कोई वस्तु उत्पन्न हो या बने। कारज=कार्य, उत्पन्न या बनी हुई वस्तु। कुलिस=वज्र। अस्थि=हड्डी। उपल=पत्थर। कराल=भयङ्कर।

राजा का धर्म

(५०४)

काल बिलोकत ईस-रुख, भानु काल-अनुहारि।
रविहि राउ राजहिँ प्रजा, बुध ब्यवहरहिँ बिचारि॥

शब्दार्थ—राउ=राजा। बिचारि=सोचकर।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे एकावली अलङ्कार है।

(५०५)

जथा अमल पावन पवन, पाइ कुसङ्ग सुसङ्ग।
कहिय कुबास-सुबास तिमि, काल महीस-प्रसङ्ग॥

शब्दार्थ—जथा=यथा, जैसे। पावन=पवित्र। कुबास-सुबास=दुर्गन्ध, सुगन्ध। तिमि=उसी तरह। महीस=राजा। प्रसङ्ग=साथ, ससर्ग।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरण अलङ्कार है।

(५०६)

भलेहु चलत पथपोच भय, नृप-नियोग-नय-नेम।
सुतिय सुभूपति भूषियत, लोह-सँवारित हेम॥

शब्दार्थ—नियोग=आज्ञा। नय=नीति। नेम=नियम। लोह सँवारित=लोहे के हथौड़े से गढ़कर बनाया हुआ। हेम=सोना।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में दृष्टान्त अलङ्कार है।

(५०७)

माली भानु किसान सम, नीति-निपुन नरपाल।
प्रजा-भाग-बस होहिँगे, कबहुँ-कबहुँ कलिकाल॥

दोहार्थ—माली, सूर्य और किसान की तरह नीतिवान् राजा, इस कलिकाल में प्रजा के भाग्य ही से कभी कभी उत्पन्न होंगे, सदैव नहीं।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे पूर्णोपमा अलङ्कार है।

नोट—माली अपने बाग के छोटे बड़े समस्त पौधों और वृक्षों को सींचता और सँवारता है, मुर्झाये हुए पौधों में जल दे, उन्हें हरा भरा करता है। बड़े वृक्षों तथा पौधों को, जो छोटे पेड़ों और पौधों की बाढ़ में रुकावट डालते हैं काटता है, जो वृक्ष या पौधे फलने पर फलों के भार से झुक पड़ते हैं, उनमें बाँस या बल्ली का सहारा लगा, उनको झुकने नहीं देता। अपने बाग से बाग की उपज पाने के लिये, माली को इतना परिश्रम करना पड़ता है।

(२) सूर्य—अपनी किरणों से समुद्र और नदी के जल को खींचता है। जल खींचते समय उसे कोई नहीं देख पाता। जब उस जल को वह बरसाता है तब लोग हर्षित होते हैं।

(३) किसान—खेत की फसल तैयार करने के लिये हल चलाता है, खाद देता है, बीज बोता है और पशु पक्षी तथा चोरों से खेती की रक्षा करने को रात दिन खेत को रखाता है।

(५०८)

बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा-सुभाग तें, भूप भानु सो होइ॥

शब्दार्थ—हरषत=खुश होते हैं। करषत=जल सींचते हैं। प्रजा-सुभाग तें=प्रजाजनों के सौभाग्य से। सो=सदृश, समान।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में <u>पूर्णोपमा</u> अलङ्कार है।

(५०९)

सुधा सुनाज कुनाज पल, आम असन सम जानि।
सुप्रभु प्रजाहित लेहि कर, सामादिक अनुमानि॥

शब्दार्थ—सुधा=अमृत। यह यहाँ पेय पदार्थों के लिये प्रयुक्त किया गया है। सुनाज=अच्छा अन्न, यथा चाँवल, गेहूँ आदि। कुनाज=खराब अन्न, यथा कोदो, सामाँ, मकई आदि। पल=मांस। असन=भोजन। सामादिक अनुमानि=सामदामादि नीतियों के अनुमान द्वारा।

(५१०)

पाके पकये विटप-दल, उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहैं नरेस त्यौं, करि विचार मन बीच॥

शब्दार्थ—पाके=अपने आप पके हुए। पकाये=कृत्रिम उपायों से पकाये हुए। विटप-दल=वृक्षों की डालियाँ, पत्ते आदि।

(५११)

रीझि खीझि गुरु देत सिख, सखा सुसाहिब साधु
तोरि खाय फल होइ भल, तरु काटे अपराधु।

शब्दार्थ—रीझि=खीझि=प्रसन्नता, अप्रसन्नता।

(५१२)

धरनि-धेनु चारितु चरत, प्रजा सुवच्छ पेन्हाय
हाथ कछू नहिँ लागि है, किये गोड़ की गाय।

शब्दार्थ—धरनि=पृथिवी। चारितु=चारा, घास। चरित=चरित्र, आचरण। सुवच्छ=अच्छा बछड़ा। पेन्हाइ=थन को मठ कर थनों से दूध उतारना। गोड़ की गाय=वह गाय, जो पिछले दोनों टाँगो मे रस्सी लगाकर दुही जाती है। गाइ=टाँगें।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

(५१३)

चढ़े बघूरे चङ्ग ज्यों, ज्ञान ज्यों सोक-समाज।
करम धरम सुख सम्पदा, त्यों जानिवे कुराज॥

शब्दार्थ—बघूरे=हवा का बवंडर। चङ्ग=कनकैया, पतंग। कुराज=बुरा राज्य।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में <u>उदाहरण</u> अलङ्कार है।

(५१४)

कण्टक करि करि परत गिरि, साखा सहस खजूरि।
मरहिं कुनृप करि-करि कुनय, सो कुचालि भव भूरि॥

शब्दार्थ—कुनृप=बुरा राजा। कुनय=कुनीति। कुचालि=अनीति। भव=संसार।

(५१५)

काल-तोपची तुपक-महि, दारू-अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहुमीपाल॥

शब्दार्थ—तोपची=तोप चलानेवाला, गोलंदाज। तुपक=तोप। दारू=बारूद। अनय=अन्याय। पलीता=बत्ती, जिससे रंजक में आग लगायी जाती है। गुरु=भारी। पुहुमीपाल=राजा।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में <u>रूपकालङ्कार</u> है।

(५१६)

भूमि रुचिर रावन-सभा, अङ्गदपद-महिपाल।
धरम-राम नय-सीय बल, अचल होत शुभ काल॥

शब्दार्थ—रुचिर=सुन्दर। नय=नीति। बल=शक्ति।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

(५१७)

प्रीति रामपद नीतिरति, धरम प्रतीति सुभाइ।
प्रभुहि न प्रभुता परिहरै, कबहुँ वचन मन काइ॥

शब्दार्थ—प्रभुहिँ=मालिक को। काइ=काया।

(५१८)

करके कर मन के मनहिँ, वचन वचन गुन जानि।
भूपहि भूलि न परिहरै, विजय विभूति सयानि॥

शब्दार्थ—सयानि=चातुर्य, सयानपना।

(५१९)

गोली वान सुमंत्र-सर, समुझि उलटि मन देखु।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु, वचन विचारि विसेखु॥

शब्दार्थ—सुमत्रसर=अभिमन्त्रित वाण। विसेखु=विशेष।

दोहार्थ—उत्तम राजा के वचन सुमन्त्रित बाण के समान, जो कभी व्यर्थ नहीं जाते, मध्यम राजा के वचन (साधारण) बाण के समान, जो कभी चूक भी जाते हैं और कभी निशाने पर लग भी जाते हैं और नीच राजा के वचन गोली की तरह कर्कश होते हैं।

(५२०)

सत्रु सयानो सलिल ज्यौं, राख सीस रिपु नाउ।
बूड़त लखि पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ॥

शब्दार्थ—सयानो=चतुर। सलिल=जल। चपरि=तेजी के साथ।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उपमा अलङ्कार है।

(५२१)

रैयत राज-समाज घर, तन धन धरम सुबाहु।
सान्त सुसचिवन सौंपि सुख, बिलसहि नित नरनाहु॥

शब्दार्थ—रैयत=प्रजा। राज-समाज=राज परिवार। सुबाहु=सेना। विलसाइ=आनन्दित रहते हैं। नरनाहु=राजा।

(५२२)

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक।
पालै पोषै सकल अङ्ग, तुलसी सहित विवेक॥

शब्दार्थ—मुखिया=नेता, सरदार।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में पूर्णोपमा अलङ्कार है।

(५२३)

सेवक कर-पद-नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकवि सराहहिं सोइ॥

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में धर्मलुप्तोपमा अलङ्कार है।

(५२४)

मंत्री गुरु अरु वैद जो, प्रिय बोलहिँ भय आस।
राज-धरम तन तीनि कर, होइ वेगि ही नास॥

शब्दार्थ—वैद=वैद्य, हकीम। प्रिय बोलहिँ=प्रसन्न करने के लिये चापलूसी करें। भय आस=डर और कुछ पाने की आशा से।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में यथासंख्यालङ्कार है।

(५२५)

रसना मंत्री दसन जन, तोष पोष निज काज।
प्रभुकर सेन पदादिका, बालक राज-समाज॥

शब्दार्थ—रसना=जीभ। दसन=दाँत। जन=कर्मचारी वर्ग। तोष=तुष्ट करना। पोष=पुष्ट करना। पदादिका=पैदल आदि चतुरङ्गिणी सेना।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में रूपकालङ्कार है।

(५२६)

लकड़ी डौआ करछुली, सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु संग्रहहिं परिहरहिं, सेवक सखा बिचारि॥

शब्दार्थ—डौआ=डोई। अनुहारि=अनुसार।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे दृष्टान्तालङ्कार है।

(५२७)

प्रभु समीप छोटे बड़े, निबल होत बलवान।
तुलसी प्रगट बिलोकिये, कर अँगुली अनुमान॥

दोहार्थ—मालिक के पास रहनेवाले छोटे भी (नौकर) बड़े और निर्बल भी प्रबल हो जाते हैं। यह समझने के लिये हाथ की अँगुलियों ही से अनुमान द्वारा समझ लो।

(सिर के पास रहनेवाली हाथ की अँगुलियाँ जितनी मज़बूत होती हैं, उतनी मज़बूत पैर की अँगुलियाँ, जो सिर से बहुत दूर हैं, नहीं होतीं।)

(५२८)

साहब तें सेवक बड़ो, जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गये हनुमान॥

शब्दार्थ—सुजान=भली भाँति जानना। उदधि=समुद्र।

(५२९)

तुलसी भल वरतरु बढ़त, निज मूलहि अनुकूल।
सबहि भाँति सब कँह सुखद, दलनि-फलनि बिनु-फूल

शब्दार्थ—बरतरु=बरगद का पेड़। मूलहिँ अनुकूल=जड़ के अनुसार। दलनि फलनि=पत्ते और फल। फूल=(१) दर्प, (२) फूल।

(५३०)

सधन सगुन सधरम सगन, सबल सुसाँइ महीप।
तुलसी जे अभिमान बिनु, ते त्रिभुवन के दीप॥

शब्दार्थ—सगन=सेवकों से युक्त। सुसाँइ=योग्य स्वामी। दीप=दीपक।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे मे निदर्शनालङ्कार है।

बिन कर्तव दिखाये ही पदवी

(५३१)

तुलसी निज करतूति बिनु, मुकुत जात जब कोइ।
गयो अजामिल लोक हरि, नाम सक्यो नहिँ धोइ॥

शब्दार्थ—मुकुत जात=मोक्ष पद पा जाता है। हरिलोक=विष्णुलोक।

कथाप्रसङ्ग—अजामिल जाति का ब्राह्मण अवश्य था, किन्तु था महापातकी। जब वह मरने लगा, तब उसने अपने पुत्र को, जिसका नाम नारायण था, "नारायण ! नारायण !!" कह कर बुलाया। फल यह हुआ कि, नरकगामी अजामिल को विष्णुदूत आकर वैकुण्ठ को ले गये।

बड़ों का सहारा

(५३२)

बड़ो गहे ते होत बड़, ज्यों बावन-कर-दण्ड।
श्रीप्रभु के सङ्ग सों बढ़ा, गयो अखिल ब्रह्मण्ड ॥

शब्दार्थ—गहना=पकड़ना। दण्ड=डंडा, लाठी।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में उदाहरणालङ्कार है।

तामसिक-दान

(५३३)

तुलसी दान जो देत हैं, जल में हाथ उठाय।
प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाय ॥

शब्दार्थ—प्रतिग्राही=प्रतिग्रही, दान लेनेवाला।

नोट—अनुमान से जान पड़ता है कि, इस दोहे की रचना, कवि-सम्राट ने किसी मछली फँसानेवाले को जल में चारा फेंकते देखकर, की है।

(५३४)

आपन छोड़ो साथ जब, ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अम्बुज अम्बु-बिनु, तरनि तासु रिपु होइ॥

शब्दार्थ—आपन=स्वजन। हितू=भला करनेवाला। अम्बुज=कमल। अम्बु=पानी। तरनि=सूर्य। रिपु=शत्रु।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

'कलाप-गति'

(५३५)

उरवी परि कलहीन होइ, ऊपर कलाप्रधान।
तुलसी देखु कलाप-गति, साधन-धन पहिचान॥

शब्दार्थ—उरवी=पृथिवी। कलहीन=सुन्दरता रहित। कला=प्रभा। कलाप=मोर के पँख। साधन-धन=साधनरूपी धन।

नीच का सङ्ग

(५३६)

तुलसी सङ्गति पोच की, सुजनहिँ होति म-दानि
ज्यौँ हरि रूप सुताहिँ तेँ, कीन गोहारी आनि।

शब्दार्थ—पोच=नीच । म-दानि=कल्याण-दायिनी । (म=कल्याण, दानि=देनेवाली ।) आन गोहारी कीन=आकर गुहार की, सहायता की ।

कथाप्रसङ्ग—किसी राजकुमारी ने प्रण किया था कि, वह चतुर्भुज भगवान विष्णु के साथ विवाह करेगी । यह जान लेने बाद किसी बढ़ई ने काठ के दो हाथ अपने लगा, राजकुमारी के साथ विवाह कर लिया । इस घटना के कुछ दिनों बाद उस राजकुमारी के पिता पर सङ्कट आया । तब उसने अपनी बेटी से कहा कि, विष्णु से प्रार्थना करो कि, मेरा सङ्कट दूर हो । राजकुमारी ने सच्चे हृदय से प्रार्थना की और कहा—भगवन् ! मैं तो आप ही को वरना चाहती थी, किन्तु क्या करूँ धोखे में आ गयी । अत. आप मेरी मदद करें । यह सुन अन्तर्यामी भगवान् विष्णु ने उसके पिता की विपत्ति दूर कर दी थी ।

कुचाली कलि-काल

(५३७)

कलि-कुचालि सुभ मति-हरनि, सरलै दण्डै चक्र ।
तुलसी यह निहचय भई, बाढ़ि लेति नव वक्र ॥

शब्दार्थ—सरलै=सज्जन को भी । दण्डै=दण्ड देता है । चक्र=राजचक्र । निहचय=निश्चय । बाढ़ि लेत नव वक्र=कौटिल्य सदैव नये नये रूप में बढ़ता जा रहा है ।

पक्षियों की विशेषता

(५३८)

गोखग खेखग वारिखग, तीनों माहिँ विसेक।
तुलसी पीवैँ फिरि चलैँ, रहैँ फिरैँ सङ्ग एक॥

शब्दार्थ—गोखग=भूमि पर रहनेवाले पक्षी यथा, मयूर, मुर्गा, तीतर आदि। खेखग=आकाश में रहनेवाले पक्षी—यथा चील, गिद्ध आदि। वारिखग=जल में रहनेवाले पक्षी यथा पन-डुब्बी, बत्तक, हंस आदि। विसेक=विशेषता।

मङ्गल-मूल

(५३९)

साधन-समय सुसिद्धि लहि, उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनिउ समय सम, ते महि मङ्गल-मूल॥

शब्दार्थ—तीनिउ समय सम=तीनों कालों में एकरस अर्थात् समान।

बड़ों की सीख मानने का फल

(५४०)

मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख, सिर धरि करहिँ सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जनम कर, नतरु जनम जग जाय॥

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में निदर्शनालङ्कार है।

(५४१)

अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिँ पितु बैन।
ते भाजन सुख-सुजस के, बसहिँ अमरपति-ऐन॥

शब्दार्थ—पितुबैन=पिता की बात। अमरपति=इन्द्र। ऐन=घर।

पातिव्रत्य का प्रभाव

(५४२)

सोरठा

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभगति लहै।
जस गावत स्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहिँ प्रिय

शब्दार्थ—सहज=स्वभावत। अपावन=अपवित्र। स्रुति=वेद। अजहुँ=आज तक भी। तुलसिका=तुलसी।

शरणागत

(५४३)

दोहा

सरनागत कहुँ जे तजहिँ, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिनहिँ बिलोकत हानि॥

शब्दार्थ—पाँवर=नीच। अनहित=नुकसान। हानि=हानि, नुकसान।

अलङ्कार-परिचय—इस दोहे में निदर्शनालङ्कार है।

(५४४)

तुलसी तृन जल-कूल को, निरधन निपट निकाज।
कै राखै कै सङ्ग चलै, बाँह गहे की लाज॥

शब्दार्थ—जल-कूल=नदी का किनारा। निपट=अत्यन्त। निकाज=निकम्मा। बाँह गहे की लाज=शरणागत की लाज।

अलङ्कार-परिचय—इसमें लोकोक्ति अलङ्कार है।

कलि-माहात्म्य

(५४५)

रामायन अनुहरत सिख, जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै, कलि-कुचालि परप्रीति॥

शब्दार्थ—अनुहरत=अनुकरण। भारत=महाभारत ग्रन्थ। कुचालि=दुष्कर्म।

(५४६)

पात-पात कै सींचिबो, बरी-बरी कै लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु को न॥

शब्दार्थ—पात-पात को=पत्ते पत्ते को। बरी=मुगौरी या मूँग की पीठी की बनाई हुई खाद्य वस्तु विशेष। लोन=निमक। डहकना=हानि उठाना।

(५४७)

प्रीति सगाई सकल गुन, बनिज उपाय अनेक।
कल-बल-छल कलिमल-मलिन, डहकत एक हि एक॥

शब्दार्थ—सगाई=नाता। बनिज=व्यापार। कल=कला-कौशल। कलिमल-मलिन=कलियुग के पाप से मलिन। डहकत एक हि एक=एक दूसरे को ठगता है।

(५४८)

दम्भ-सहित कलि धरम सब, छल-समेत व्यवहार।
स्वारथ-सहित सनेह सब, रुचि-अनुहरत अचार॥

शब्दार्थ—दम्भ=पाखण्ड, दिखावट। व्यवहार=बर्ताव। अचार=आचरण।

(५४९)

चोर चतुर बटमार भट, प्रभुप्रिय भँडुआ भण्ड।
सब-भच्छक परमारथी, कलि सुपन्थ पाषण्ड॥

शब्दार्थ—बटमार=लुटेरा। भट=वीर। प्रभुप्रिय=मालिक का प्यारा। भँडुआ=वेश्या का दलाल। भण्ड=मसखरा, भाँड़। सब भच्छक=सब कुछ खा पी लेनेवाला। सुपन्थ=सुमार्ग।

(५५०)

असुभ बेष भूषन धरैं, भच्छ अभच्छ जे खाहिं।
ते जोगी ते सिद्ध नर, पूजित कलिजुग माहिं॥

शब्दार्थ—असुभ बेप=अमङ्गल बेप। धरैं=पहने। भच्छ्‌-अभच्छ=भक्ष्याभक्ष्य, खाने अनखाने लायक।

(५५१)

सोरठा

जे अपकारी चार, तिनकर गौरव मान्य तेइ।
मन-बच-करम लबार, ते बकता कलिकाल महँ॥

शब्दार्थ—चार=चुगुलखोर। मान्य=माननीय। लबार=झूठा। बकता=व्याख्यानदाता।

(५५२)

दोहा

ब्रह्म-ग्यान बिनु नारि-नर, कहहिँ न दूसरि बात।
कौड़ी लागि ते मोहबस, करहिँ बिप्र-गुरु-घात॥

शब्दार्थ—ब्रह्मज्ञान=परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान। गुरु=गुरुजन, पूज्यजन।

(५५३)

बादहिँ सूद्र द्विजन सन, "हम तुम तें कछु घाटि।
जानहिँ ब्रह्म सो बिप्रवर," आँखि दिखावहिँ डाँटि।

शब्दार्थ—बादहिँ=बहस करते हैं। घाटि=कम। ब्रह्म=परमात्मा अथवा वेद।

(५५४)

साखी सबदी दोहरा, कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिँ भगत कलि, निन्दहिँ बेद-पुरान॥

शब्दार्थ—साखी=कबीर पथी तथा पलटू पंथी साधुओं की आदेशात्मक वाणियाँ। दोहरा=दोहा। कहनी=कहानी। उपखान=कथानक। निरूपहिँ=निरूपण करते हैं।

(५५५)

स्रुति-सम्मत हरि-भक्ति-पथ, संयुत बिरति विवेक।
तेहि परिहरहिँ बिमोहबस, कल्पहिँ पन्थ अनेक॥

शब्दार्थ—स्रुति-सम्मत=वैदिक, वेदविहित। हरिभक्त पथ=भगवान की भक्ति का मार्ग। सयुत=सयुक्त। कल्पहिँ=गढ़ते हैं। पथ=मार्ग। यहाँ मजहब से अभिप्राय है।

(५५६)

सकल धरम बिपरीत कलि, कल्पित कोटि कुपन्थ।
पुन्य पराय पहार बन, दुरें पुरान सुग्रन्थ॥

शब्दार्थ—पराय=भगे। दुरे=छिपे।

(५५७)

धातुबाद निरुपाधि-बर, सदगुरु-लाभ सुमीत।
देव-दरस कलिकाल में, पोथिन दुरे सभीत॥

शब्दार्थ—धातुवाद=रसायन विद्या। निरुपाधि=निर्विघ्न। वर=वरदान। सुमीत=विश्वासपात्र मित्र। देव-दरस=देवदर्शन। पोथिन=पुस्तकों में। सभीत=भयभीत होकर।

(५५८)

सुर-सदननि तीरथ पुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज॥

शब्दार्थ—सुर-सदननि=देवालय। पुरिन=नगरों के। मवासे मारि=किलाबन्दी करके। राजत=विराजमान है।

अलङ्कार-परिचय—इसमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(५५९)

गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥

शब्दार्थ—गोंड़=जङ्गली लोगों की एक जाति विशेष। गँवार=मूर्ख। नृपाल=नरेश। यमन=म्लेच्छ। महा-महिपाल=महाराज।

(५६०)

फोरहिं सिल-लोढ़ा सदन, लागे अढुक पहार।
कायर कूर कपूत कलि, घर-घर सहस डहार॥